मास्टर ऑफ सोशल वर्क
(M.S.W.)
अन्तिम वर्ष

व्यावहारिक समाज कार्य-II
(Social Work Practice - II)
(द्वितीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (सतना) म.प्र. - ४८५३३४

व्यावहारिक समाज कार्य–II
(Social Work Practice- II)

ई–संस्करण 2023–24 / M.S.W. –II - 08

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. भरत मिश्र
कुलपति
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

चन्द्रभूषण पाण्डेय

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. अजय आर. चौरे,

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डॉ. कमलेश थापक डॉ. ललित सिंह

डॉ. नीलम चौरे डॉ. राजेश त्रिपाठी

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

शिवांगी त्रिपाठी

सम्पर्क सूत्र :
डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र.शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है–'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन–पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023–24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व–अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024–25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई–स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।
पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

व्यावहारिक समाज कार्य–II
(Social Work Practice-II)

विषय सूची

1. समुदाय क्या है
2. ग्रामीण समुदाय
3. ग्रामीण समुदाय की मुख्य विशेषताएँ
4. नगरीय समुदाय
5. गन्दी बस्तियों के कारण
6. प्रव्रजन के सामान्य प्रकार
7. जनजातीय समुदाय
8. सामुदायिक संगठन
9. सामाजिक क्रिया
10. भूदान और ग्रामदान आन्दोलन
11. नेतृत्व
12. सामुदायिक विकास
13. सामुदायिक कोष
14. नगरीय सामुदायिक विकास की विशेषताएँ
15. भारत में पंचायतीराज

समुदाय की अवधारणा –

एक वृहद मानव समाज के अन्तर्गत जीवन यापन करने के लिए व्यक्तियों का एक समूह होता है जो हमेशा सम्बन्धों को आगे बढ़ाता है। समाज एक वृहद मानवीय समूह है जो एक भौगोलिक परिस्थिति, राजनैतिक शक्ति और सांस्कृतिक प्रत्याशाओं पर आधारित है। समाज विज्ञान के अनुसार समाज सामाजिक स्तरीकरण और उत्तराधिकार पर आधारित है।

समाज और समुदाय शब्दों का प्रयोग प्रायः एक अर्थ में किया जाता है। एक सामाजिक समूह एक सामान्य समूह की अभिव्यक्ति करता है न कि समूह के अन्तर्गत के है व्यक्तिगत सम्बन्धों का समुदाय परस्पर रुचि, नेटवर्क और सम्बन्धों पर आधारित है समुदाय में एक से दूसरे समूह में जाया जा सकता है किन्तु समाज में एक से दूसरे समाज में जाना कठिन है। अनेक समुदाय एक समाज के अन्तर्गत आ जाते हैं।

समुदाय क्या है? समुदाय शब्द फ्रेंच भाषा के (Communait) कमुनाइट तथा लैटिन भाषा के कमुनस (Cummunus) शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका उपयोग भिन्नता और संगठित समाज के रूप में किया जाता है। Communait = cummmunis समुदाय का शाब्दिक अर्थ परस्पर देन–लेन के रूप में माना जाता है। समुदाय मेरा नहीं हमारा होता है। परिवार, शिक्षा व्यवसाय, ब्नउउ=जवहमसीमत कार्य, खेलकूद, धर्म संस्कृति आदि जो हमारे जीवन के अंग हैं (साथ साथ) Munis= servingtogether समुदाय के अन्तर्गत सम्पादित है।

यह सब हमारे जीवन का आधार और नियमित कार्य है। (परस्पर सेवादान) जब तक यह सामान्य रूप से चलता रहता है तब तक कोई चिन्ता नहीं होती किन्तु जब उसमें कभी किसी प्रकार की विकृति आती है उसी समुदाय के संगठनात्मक पहलू पर विचार होता है और यहीं से आरंभ होता है। समाज कार्य की सहायता की आवश्यकता।

अधिकांश लोग समुदाय का अर्थ एक स्थान, शहर या नगर को समुदाय समझते हैं जहाँ वे रहते हैं किन्तु समुदाय उससे अधिक है। यह हमारे जीवन और परस्पर समाजीकरण का मुख्य तत्व है। समुदाय हमारे अस्तित्व, उद्देश्य तथा सहभागिता का ज्ञान कराता है।

जहाँ लोग पारस्परिक लाभ के लिए एक निश्चित स्थान पर निवास करते हैं तथा एक भाषा रीति–रिवाज, विचार, कौशल और सेवाओं का परस्पर उपयोग करते हैं।

समुदाय के महत्वपूर्ण तत्व

1. एक निश्चित भौगोलिक स्थान

2. पारस्परिक क्रियाकलाप एवं रुचि

3. सर्व सामान्य के लिए व्यक्तियों का उद्देश्यपूर्ण सामूहीकरण

4. पारस्परिक क्रियाकलाप से प्राप्त लाभों का वितरण

समुदाय का वर्गीकरण

1. रुचि समुदाय – एक निश्चित प्रकार की रुचि की अभिव्यक्ति के लिए समुदाय का निर्माण हो जाता है।

2. आवश्यकता या लाभ के लिए समुदाय – यह उन लोगों का समुदाय है जो किसी एक प्रकार की आवश्यकता या समस्या की अनुभूति करते हैं और उससे या उसके समाधान के लिए एकत्रित हो जाते हैं।

3. क्रियाशील समुदाय – ऐसे लोगों का समूह है जो किसी समस्या की अनुभूति करते हैं और उसके समाधान के लिए कार्यक्रमों का निर्धारण कर उसके लिए कार्य करते हैं, जिन्हें (Change Agent) भी कहा जाता है।

4. लक्ष्य समुदाय – ऐसे लोगों का समुदाय है जो नीति कार्य आदि समस्याओं के समाधान के लिए कार्य करने के लिए तत्पर होते हैं।

5. विविध समुदाय –यह वह समुदाय है जिसके अन्तर्गत रहकर अन्य सारे कार्यक्रमों को संचालित किया जा सके।

समुदाय नये अर्थों में –अन्य संस्थाओं की तरह समुदाय के कार्यों, उद्देश्यों, लक्ष्यों आदि में वर्तमान समय में परिवर्तन दिख रहा है और समाज कार्य के लिए इसका अध्ययन आवश्यक हो रहा है।

1. संचार और यातायात के क्षेत्र में नया प्रौद्योगिकी के अनुसार समुदाय अब केवल वह नहीं है जहाँ हम निवास करते हैं, हम किसी उपनगर, कस्बा या शहर मेंनिवास करते हैं अब उसे अपना समुदाय नहीं कह सकते हैं। समुदायों के क्षेत्र में को इतनी विविधीकरण और विशेषता आ गयी है जिससे हम किसी एक समुदाय पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं मानते हैं।

अपनी आवश्यकताओं की विभिन्न समुदाय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं जिससे समाज कार्य की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो गयी। सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता को अब विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले विभिन्न समुदायों का भी ध्यान रखना आवश्यक है। इनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित समुदाय है, जिनके कार्यों और उद्देश्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

1. आध्यात्मिक समुदाय

2. परिवार समुदाय

3. जीवित समुदाय

4. मनोरंजन के लिए समुदाय

5. ज्ञानार्जन के लिए समुदाय

6. रोजगार समुदाय

7. स्वास्थ्य समुदाय

8. इन्टरनेट समुदाय

इनमें अनेक समुदाय एक विशेष आवश्यकता के लिए विशेष भूमिका का निर्वाह सामान्य उद्देश्य के लिए किया जाता है। इस प्रकार विविध समुदाय अपने सदस्यों के लिए विशेष भूमिका प्रदान करते हैं।

समुदाय की परिभाषाएँ

(1) मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, ''समुदाय सामाजिक जीवन का वह क्षेत्र है जिसमें सामाजिक पारस्परिकता की मात्रा द्वारा पहचाना जा सकता है।''

इस परिभाषा के अनुसार– (1) समुदाय एक सामाजिक समूह है। (2) इसमें सामाजिक समरसता पाया जाता है।

(2) डेविस ''समुदाय सबसे छोटा वह सामाजिक समूह है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक जीवन के समस्त पहलु आ जाते हैं।''

इस परिभाषा के अनुसार समुदाय–

(1) व्यक्तियों का एक समूह है

(2) जिसका आधार क्षेत्रीय है

(3) जिसमें सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ जाते हैं।

(3) किवलयंग – समुदाय एक ऐसा समूह है जो एक ही संस्कृति के अधीन एक स्थान अथवा क्षेत्र में निवास करता है तथा जो अपनी क्रियाओं के लिए एक सामान्य भौगोलिक केन्द्र से प्रभावित रहता है।

समुदाय के तत्व – इन परिभाषाओं से यह निश्चित हो जाता है कि समुदाय को कुछ निश्चित कारकों के आधार पर निर्धारित किया जाता है जो समुदाय के मुख्य तत्व कहलाते हैं। ये मुख्य तत्व हैं–

(1) स्थानीय क्षेत्र (Locality) – एक समुदाय एक निश्चित क्षेत्र में निवास करता है। यहाँ तक कि घुमन्तू जातियों का भी सम्बन्ध किसी क्षेत्र विशेष से है इसलिए उन्हें भी समुदाय के रूप में मान्यता प्राप्त है।

(2) सामुदायिक भावना (Community Sentiments)– क्षेत्रीयता या भौगोलिक क्षेत्र समुदाय की बाहरी संरचना की अभिव्यक्ति करता है किन्तु सामुदायिक भावना इसकी आन्तरिक संरचना है। समुदाय के व्यक्तियों के मध्य हम भावना (We feeling) होना आवश्यक है जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति या समुदाय के प्रति तथा उसके उद्देश्यों के प्रति एक निर्धारित मार्ग प्रशस्ति हो सके। शिक्षा के माध्यम से समाजीकरण कर इस भावना को बल

प्रदान किया जा सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तत्व है, जिसके माध्यम से समुदाय को निरंतरता प्रदान करने में संरलता प्राप्त हो जाती है।

इसके मुख्य मनोवैज्ञानिक तत्व–

(1) हम की भावना (We feeling)

(2) कर्तव्य की भावना (Role feeling)

(3) निर्भरता की भावना (Dependency feeling)

सामुदायिक विघटन रू समाज जितना ही तेजी से विकास करता है उसमें उसी के अनुसार विकृतियाँ उत्पन्न होने लगती है, जिससे समुदाय की मान्यताओं में अवरोध उत्पन्न होने लगता है। यहीं से आरम्भ होता है सामाजिक विघटन। सामाजिक विघटन की स्थिति में सामाजिक कार्यकर्ता का दायित्व बढ़ जाता है। यह विघटन मुख्य रूप से तीन कारणों से होता है–

(1) आर्थिक कारण –छोटे और कुटीर उद्योगों का संजाल समाप्त होने के कारण लोग बड़े उद्योगों, शहरों और कारखानों में काम करने लगे, जिससे लोगों में निजता की। भावना का विकास हुआ। निजता में केवल अपना परिवार दिखने लगा व पारिवारिक पृष्ठभूमि संकुचित हो गया।

(2) आवागमन और संचार के साधन –आधुनिक युग में आवागमन और संचार के साधनों का विकास हुआ है जिसके कारण छोटे समुदायों के लोग बड़े शहरों और औद्योगिक क्षेत्रों की ओर पलायन करते हैं इसके कारण भी समुदाय में विघटन हो रहा है।

(3) सामाजिक कारण – आज परिवर्तन का युग है। व्यक्ति एक नहीं अब कई अलग–अलग समुदायों का सदस्य बन गया है। एक ही व्यक्ति परिवार और समुदाय के साथ ही मनोरंजन समुदाय, इण्टरनेट समुदाय आदि का समूह हो गया है जिसके कारण पुरानी मान्यताएँ ढह रही हैं और समुदाय के लोग इन्हें स्वीकार करने के लिए संघर्ष कररहे हैं। यह भी सामुदायिक विघटन का एक कारक है। समुदाय वही नही है जिसमें आज के लोग निवास कर रहे हैं बल्कि समुदाय उस समय भी था जब वर्तमान में रहने वाले पैदा भी नहीं हुए थे और यह तब भी रहेगा जब उसमें बसने वाले लोग नहीं रहेगें। जो लोग बाहर चले गये हैं और उनके यहाँ आने की इच्छा है वे लोग भी समुदाय के सदस्य हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समुदाय एक समाज शास्त्रीय संरचना है जिसमें लोग अर्न्तक्रिया करते हैं। केवल क्रिया नहीं बल्कि व्यक्ति की पारस्परिकता, मूल्य, विश्वास आदि भी एक रूप होते हैं। ग्रामीण समुदायों में आपस में तो सम्बन्ध है ही किन्तु आस–पास के गाँवों से भी शादी–ब्याह, खान–पान आदि का सम्बन्ध बना रहता है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति की पहचान प्रथम नाम से होती है। समुदाय के अन्तर्गत समुदाय हो सकते हैं जैसे जिले के अन्तर्गत, तहसील, ब्लाक, थाना, न्यायपंचायत आदि के अन्तर्गत ही ग्रामीण या नगरीय समुदाय आते हैं। घुमन्तू जातियों का भी समुदाय होता है वे संसाधनों के अभाव में घूम–घूम कर अपने जीवन का निर्वाह करते हैं किन्तु उनका सम्बन्धं उनके मौलिक स्थान से बना रहता है। नगरीय समुदाय विशेष प्रकार के होते हैं। विभिन्न समुदायों से आए लोग

यहाँ निवास करते हैं इसलिए यहाँ समुदाय के स्थान विशेष को चिहिन्त करना सरल नहीं है यहाँ Heterogenous समुदाय होता है बाहर से कई समुदायों के लोग यहाँ निवास करते हैं जिनके भाषा बोल–चाल, रीति–रिवाज और परम्पराएँ अलग होते हैं। इस समुदाय को संगठित करना एक बहुत बड़ी समस्या होती है।

ग्रामीण समुदाय (Rural Communiity)

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि और कृषक ग्रामीण समाज की मुख्य विशेषताएँ हैं। विकसित राष्ट्रों और पिछड़े देशों में भी ग्रामीण समुदाय विद्यमान है जहाँ कृषि कार्य हाते हैं। फर्क यह है कि विकसित राष्ट्रों में कृषि कार्य में कम लोग संलिप्त है और भारत में कृषि कार्यों में संलिप्तता अधिक है। 70 प्रतिशत से अधिक लोग गाँवों में निवास करते हैं और सारी गरीबी और बेचारगी के बावजूद छोटे जोतों के प्रति चिपके रहते हैं। अपनी भूमि को वह माता का दर्जा देते हैं और अलाभकर जोतों पर भी आश्रित रहते हैं। कुछ बड़े किसान बड़े शहरों में उच्च पदों पर कार्यरत हैं, व्यापार करते हैं अच्छी आय के मालिक हैं किन्तु अपनी जमीन के प्रति इतना लगाव है कि वे बटाई आदि की व्यवस्था करते हैं जो मिल जाय उससे संतुष्ट रहते हैं। भारतीय कृषि की उत्पादकता में ये लोग बहुत बड़ी बाधा है किन्तु सब कुछ चलता है वाले देश में वे सम्मानित है और नीति निर्धारण में मुख्य भूमिका का निर्वाह करते हैं। गरीब आदमी तो भूमि से इसलिए चिपका है कि उसके पास कोई संसाधन नही है किन्तु इन अमीरों और बड़े लोगों के लिए यह भूमि अतिरिक्त आय और सम्मान का साधन है।

भारतीय ग्रामीण समुदाय एक प्रकार से बन्द और सन्तोष पर आधारित समुदाय है जो आय नही अपनी भूमि के टुकड़ों की रखवाली में अपना जीवन व्यतीत करता है। भूमि और गाँव के प्रति इतना लगाव केवल भारत और तृतीय विश्व के कुछ देशों में ही दिखताहै। अन्त में एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि भूमि के प्रति अत्यधिक लगाव देश की गरीबी का मुख्य कारक है। जितनी बड़ी जनसंख्या कृषि पर आधारित रहेगी उतनी ही कृषि में उत्पादकता की कमी रहेगी और गरीबी बढ़ती रहेगी। सामुदायिक जीवनरू कृषि और बीजों के अंकुरण आदि की जानकारी के बाद गांवों का जन्म हुआ। कृषि कार्यों और पशुपालन ने गाँवों में लोगों को एक स्थान पर केन्द्रित कर दिया जिसे हम गाँव कहते हैं। ये गाँव आत्म निर्भर थे। समुदाय की सम्पूर्ण परिभाषाएँ इन गाँवों पर लागू होती है। ये एक भूभाग में रहते हैं। एक भाषा का प्रयोग करते हैं। एक तरह का व्यवसाय करते हैं और सभी लोग एक दूसरे का सहयोग करते हैं। इस प्रकार ग्रामीण एक निश्चित भूभाग पर रहकर एक निश्चित प्रकार का व्यवसाय करते हुए परस्पर पूरकता पर आधारित जीवन का निर्वाह करते हैं। जो लोग किसी कारण बाहर चले जाते हैं वे भी अपने समुदाय के ही होते हैं और पुनः समुदाय में ही वापस आते हैं।

सामुदायिक भावना गाँवों में बहुत अधिक होती है, कहीं भी रहे कहीं भी जाय प्रत्येक व्यक्ति उस समुदाय से जुड़ा रहता है जहाँ उसका जन्म और पालन–पोषण हुआ। व्यक्ति मर जाता है, बाहर चला जाता है किन्तु उसका समुदाय नही मरता। अति लगाव के कारण भारतीय कृषि में उत्पादन और उत्पादकता कम हुई है। भारतीय गाँवों के लिए विनोबा भावे का ग्रामदांनी ग्राम समूह बहुत लाभकारी और प्रभावशाली है। जहाँ सभी मिलजुलकर खेती करते हैं तथा अन्य व्यवसाय करते हैं। खेती कुछ लोग करते हैं और लाभ सबमें वितरित

कर दिया जाता है। जो लोग बाहर है, या दूसरा व्यवसाय करते हैं उनकी खेती की सामूहिक खेती के द्वारा करा दी जाती है विनोबा भावे ने ग्राम स्वराज्य का गाँवों की आत्म निर्भरता के लिए सम्पूर्ण ग्राम को एक इकाई के रूप में माना है जिसमें सम्पूर्ण विकास एवं सहजीवन की पूरी परिकल्पना है। कुछ गाँवों में यह कार्य हो भी रहा है जो सफल है।

ग्रामीण समुदाय की मुख्य विशेषताएँ (Main Charateristics of Rural Community)

(1) प्रकृति से निकटता (Nearnes to Natur)– ग्रामीण समुदाय प्रकृति से सीधे सम्बन्धित है और गर्मी छाया बरसात, पौधे, पशु–पक्षी से उसका सीधा सम्बन्ध होता है, सीधे सम्बन्ध का प्रभाव उसके सीधे व्यक्तित्व पर भी होता है।

(2) परिवार की प्रधानता (Impaortance to Family) – ग्रामीण समुदाय में परिवार की प्रधानता आरम्भ से रही है आज भी है, परिवार उत्पादन की एक इकाई के रूप में सर्वमान्य है। बाहर से भी जो आय होती है वह परिवार की आय मानी जाती है। यद्यपि इसमें अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं फिर भी व्यक्ति के लिए परिवार एक इकाई है। जिसका सम्बन्ध आय और व्यय से भी है। परिवार में सदस्यों का नियंत्रण रखा जाता है जिससे कि उनमें किसी भी प्रकार की विकृति का समावेश न हो सके। परिवार के सदस्यों के बीच स्नेह और श्रद्धा की भावना बनी रहती है। आवश्यकता पड़ने पर परिवार का मुखिया अनुशासन कायम रखने के लिए कार्य करता है। संयुक्त परिवारों में पूर्णरूपेण समाजवादी व्यवस्था लागू है। जिसमें सभी अलग–अलग उत्पादन करते हैं और सभी को आवश्यकतानुसार सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। बच्चों, बूढ़ों, विधवाओं के संरक्षण की भी जिम्मेदारी आज परिवार की होती है।

(3) धर्म का व्यापक प्रभाव (Dominance of Religion) –धर्म यदि कही जीवित है तो वह गाँवों में है और ग्रामीण महिलाओं में है, किसी भी प्रकार की बीमारी आपदा और परेशानी में धार्मिक अनुष्ठान या पूजा–पाठ अधिक होता है। परिवार के सदस्यों को आरम्भ से ही धार्मिक मान्यताओं का पालन करने के लिए प्रेरित किया जाता है वे समुदाय की धार्मिक मान्यताओं का पालन करते हैं और उसी के अनुरूप अपनी संतानों को भी ढालने का प्रयास करते हैं।

(4) परम्परा रीति रिवाज आदर्शों का पालन (Influence of Customs and Tradition) – ग्रामीण समुदाय सरकारी नियमों कानूनों और सुविधाओं से ऊपर अपने परम्पराओं और रीति–रिवाजों को मान्यता देता है। किसी बीमारी और समस्या के समाधान के लिए रीति–रिवाज का अनुसरण किया जाता है। कुछ रीति–रिवाज ऐसे भी हैं जो पर्यावरण के अनुकूल है, जैसे– नीम, पीपल, और कुंओं का शादी–ब्याह के समय पूजन। रिवाजों के आधार पर ही कुछ कार्यों की मजदूरी भी निर्धारित होती है।

(5) संतोष और भाग्यवाद (Attitude of Satisfaction) –सब कुछ भगवान करता है। अच्छा वही करता है बुरा वही करता है। खेती में वही उत्पादन बढ़ाता है। वही कमी करता है। वारिश, आपदा सब कुछ भाग्य के कारण होता है जीवन में जो उसे प्राप्त है वह बहुत अधिक है मानकर वह संतोष को सबसे बड़ा धर्म मानता है। ष्जो आवै संतोष धन सब धन धुर समान। गरीबी, अमीरी, शिक्षा पर सब कुछ भाग्य से मिलता है। यह दृष्टिकोण गाँवों में गतिशीलता उत्पन्न होने में रुकावट डालता है।

(6) जाति के आधार पर सामाजिक स्तर का निर्धारण – प्राचीन काल से ग्रामीण समुदाय में सामाजिक स्तर का निर्धारण जातियों के आधार पर किया जाता है। लोहे, लकड़ी कपड़े की धुलाई आदि सभी कार्य विभिन्न जातियाँ करती हैं। सवर्ण और ऊँची जाति के लोग कम से कम काम करते हैं और अधिक से अधिक आराम करते हैं। यही कारण स्वतंत्रता के बाद बड़ी जातियों का आर्थिक स्तर नीचे गिरा है और कामगार जातियों का बहुत तेजी से विकास हुआ है। जातिगत पेशे भी धीरे–धीरे बन्द होने लगे हैं क्योंकि गाँवों में काम का अवसर कम हो चला है। सवर्णों की भूमि औने–पौने लेकर पिछड़ी जातियाँ आगे आ रही हैं और विभिन्न प्रकार का व्यवसाय कर रही हैं।

जजमानी प्रथा – भारतीय ग्रामीण समाज की जजमानी प्रथा समस्त विश्व के लिए एक उदाहरण है। ग्रामीण समुदाय में ब्राहमण पूजा–पाठ करता है। इसलिए गाँव के लोग उसके जजमान है। बढ़ई, लोहार, धोबी अपनी–अपनी सेवाएँ देते हैं गाँव के लोग उनके जजमान होते हैं। नाई बाल काटता है उसका जजमान हुए। शादी–ब्याह तथा अन्य अवसरों पर इनके द्वारा बनाए सामानों की पूजा होती है। ढोल की पूजा होती है। लकड़ी के पीढ़े की पूजा होती है। धोबी और नाई शादी–ब्याह और अन्य अवसरों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रकार जजमानी प्रथा का सदियों से पालन होता आ रहा है और उनका पारिश्रमिक भी निर्धारित होता है जो प्रायः फसलों के आने पर एक निर्धारित मात्रा में दिया जाता है।

नयी पीढ़ीयाँ इससे अलग होकर दूसरे व्यवसायों को करने लगी हैं। फिर भी अभी यह प्रथा काफी गाँवों में प्रचलित है।

ग्रामीण सामाजिक संरचना – व्यक्तियों और समूहों के क्रमबद्ध व्यवस्था को सामाजिक संरचना कहा जाता है। यह व्यक्तियों और समूहो के पारस्परिक सम्बन्धों का जाल है। संरचना में परिवर्तन होते हैं किन्तु उसके मुख्य तत्वों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।

संरचना के मुख्य तत्त्व

(1) सामाजिक संस्तरण

(2) सामाजिक सम्बन्ध

(3) सामाजिक संहिताएँ

समाजिक अन्तर्सम्बन्धों के व्यवस्थित एवं प्रतिमानित सम्बन्धों की संरचना में मुख्य भूमिका होती है, समाज में उच्चता और निम्नता का निर्धारण संस्तरण व आधार पर होता है। सामाजिक सम्बन्धों में इस तरह का संहतरण भारतीय ग्रामीण समुदाय की विशेषता है सभी व्यक्तियों, जातियों, समूहों को जो कार्य विशेष का निर्धारण किया गया है वही सामाजिक संस्तरण है, ग्रामीण समुदाय की कुछ संहिताएँ है जिनका पालन करना आवश्यक है। इन्हीं संहिताओं के आधार पर अर्न्तसम्बन्धों का निर्धारण होता है, मानव की स्वच्छंदता को नियंत्रित करने के लिए और समुदाय में समरूपता और स्थायित्व के लिए संहिताओं का प्रचलन है और उसका पालन भी किया जाता है।

प्राचीन सामुदायिक संरचना

(1) जाति – भारतीय ग्रामीण समुदाय की संरचना में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका है। वहाँ व्यक्ति की क्षमता और योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि जन्म के आधार पर व्यक्तियों और समूहों के कार्यों का निर्धारण होता है। भारतीय समुदाय में एक अशिक्षित और गरीब ब्राहमण भी सम्मान के योग्य है। एक जाति में जन्म लेने वाले व्यक्ति की मृत्यु भी जाति में ही होती है और उसकी संताने उसी जाति की मानी जाती है। होटलों में बर्तन साफ करने वाले ब्राहमण को भी गाँव में लोग प्रणाम करते हैं और योग्य हरिजन को कोई प्रणाम नहीं करता। दरवाजे पर उचित आसन भी नहीं दिया जाता। धीरे–धीरे इसमें परिवर्तन हो रहा है किन्तु अभी सैकड़ों वर्ष लगेगें इसमें परिवर्तन को।

भारतीय संविधान ने जाति प्रथा को बिल्कुल समाप्त करने की वार्ता की है। इस सम्बन्ध में तमाम नियम कानून भी हैं किन्तु उच्च स्तर में जाति का प्रभाव सीधे परिलक्षित होता है। जातिगत व्यवस्था ने समाज में सुदृढ़ता लाने का कार्य किया है। किन्तु कहीं–कहीं यह समस्या के रूप में खड़ा हो जाता है। जैसे कुंओं से पानी भरने और अन्य छोटे कामों में दबंगों की भूमिका के कारण जाति व्यवस्था में दोष पाए जाने लगे हैं।

संयुक्त परिवार – संयुक्त परिवार भारतीय सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण भाग माना जाता है। कृषि और व्यवसाय के सुचारु संचालन के लिए संयुक्त परिवार की आवश्यकता प्राचीन काल में रही है और आज भी है। परिवार के सारे सदस्य अपने दिए हुए दायित्व का पालन करते है और परिवार के विकास में पूरा सहयोग करते हैं। सभी सदस्य अपनी क्षमता के अनुसार काम करते हैं और उनकी आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराया जाता है। यह पूर्णरूपेण समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत काम करता है। परिवार का मुखिया सबकी सुविधा, बच्चों की पढ़ाई, चिकित्सा आदि की व्यवस्था करता है। और सब पर नियंत्रण करता है।

इस प्रथा में तमाम कमियों के कारण संयुक्त परिवार समाप्त प्रायः गाँवों में भी अब एकाकी परिवारों को ही प्रश्रय दिया जाता है। संयुक्त परिवार अब नाम मात्र के रह गए हैं। केवल उन्हीं परिवारों में यह प्रथा देखने को मिलती है जिसके परिवार के सभी सदस्य अलग–अलग काम करते हैं। मुखिया का कोई महत्व नहीं है। साल में एक या दो अवसरों पर सारा परिवार एकत्र होता है। शादी ब्याह तथा अन्य कामों के लिए सभी अपनी क्षमता के अनुसार देते हैं और अपने बच्चों की शिक्षा आदि की व्यवस्था स्वयं करते हैं।

भारत की आधुनिक ग्रामीण सामुदायिक संरचना –भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में हमेशा से परिवर्तन होते रहे हैं। विभिन्न शासन प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। यह सामाजिक संरचना आज भी हैं। भारतीय ग्रामीण समुदाय में वर्ण व्यवस्था किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान है। प्राचीन सामुदायिक संरचना में ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आते थे जो आज भी कमोवेश वर्तमान हैं। सम्प्रभु जाति का स्थान जो पहले ब्राहमण और क्षत्रिय को था वह समाप्त हो चला है। अब सम्प्रभु जातियाँ वे हैं जिनका स्वतंत्रता के बाद आर्थिक और सामाजिक विकास हुआ है।

राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाटों की बहुलता है और वे धन, बल . सब में आगे हैं इसलिए शक्ति उनके हाथों में है। पिछड़ी जातियों का स्वतंत्रता के बाद

आर्थिक और सामाजिक स्तर बहुत बड़ा है इसलिए शक्ति उनके हाथों में है। ब्राह्मण मजूमदार तथा डॉ. एस. सी. दूबे के विभिन्न गाँवों के अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि आज भी सम्प्रभुता कुछ बड़ी जातियों के पास है।

वर्ग संरचना – गाँवों में व्यवस्था का कोई अस्तित्व नहीं है। यहाँ सभी एक व्यवसाय में संलग्न है। सभी कृषक हैं। इसमें कोई बड़ा किसान है। कोई छोटा किसान है कोई भूमिहीन है। किन्तु सभी एक कार्य करते हैं इसलिए वर्ग व्यवस्था यहाँ नहीं है। वर्ण व्यवस्था ही यहाँ सर्वोपरि रही है जो कमोवेश अब भी है। ब्राहमण आज भी सम्मान पाता है। क्षत्रिय सम्मान पाता है। गाँवों में ऊँची जाति के लोगों के पास ही कृषि भूमि अधिक है, वे शिक्षित भी हैं इसलिए उन्हें सम्मान मिलता है। प्रायः ऊँची जाति के लोगों के पास ही प्रशासन और भूमि सुधार कानूनों एवं सामाजिक न्याय के दबाव के कारण पिछड़ों और निम्न जातियों में भी शक्ति नहीं है। ग्रामीण समुदाय को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) भूस्वामी

(2) व्यापारी एवं साहूकार

(3) किसान जो खेती स्वयं करता है।

(4) सझिया या बटाईदार

(5) कामगार एवं संस्कार सेवक

(6) मजदूर

ग्रामीण शक्ति संरचना –ऊपर चर्चा किया गया है कि भारतीय ग्रामीण समुदाय में अपवादों के साथ आज भी सवर्ण जातियों के हाथ में ही शक्ति है। किन्तु यह शक्ति के प्रयोग पर आधारित है अधिक दंडात्मक एवं उग्र शक्ति का प्रयोग वर्तमान समय में सम्भव नहीं है। लोगो के मानसिक स्तर में सुधार हुआ है। जिसके कारण शक्ति सम्पन्न व्यक्ति का जाति भी अपने शक्ति का प्रयोग वर्तमान नियमों और कारणों के अन्तर्गत ही करते है। ग्रामीण शक्ति संरचना को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। औपचारिक और अनौपचारिक। औपचारिक शक्ति वह है जो किसी पद के कारण हुआ है। जैसे मुखिया, प्रधान, पोप, इमाम पुजारी–महंत या पीठाधीश आदि। अनौपचारिक शक्ति वह है जो व्यक्ति की योग्यता, कौशल और चमत्कार के कारण प्राप्त होता है (महात्मा गांधी) जय प्रकाश नारायण के पास कोई पद नहीं रहा किन्तु वे हमेशा शक्ति सम्पन्न रहे हैं और उनका सम्मान सभी लोग करते थे।

शक्ति संरचना नियंत्रण का वह संयत्र है जो किसी समूह या समुदाय में प्राप्त है। परम्परागत ग्रामीण समाज में जमीदार, भूस्वामी, मुखिया तथा जाति की पंचायत के हाथों में शक्ति थी । वह अब लोकतांत्रिक ढंग से चुने हुए प्रधान के पास है। अब मुखिया और सामंत के पास कोई शक्ति नही है।

नगरीय समुदाय (Urban Community)

भारतीय धर्मशास्त्र वेद यह स्वीकार करता है आदिम काल में लोग नगरीय समुदाय में रहते थे और वहीं से सभ्यताओं का विकास हुआ। मानव समाज की प्राचीन सभ्यताओं का जन्म नगरों से हुआ इसीलिए ग्रामीण और नगरीय समुदायों में अन्तर स्पष्ट होता है। 1598 में वोटरों ने नगरों के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखा था। 1915 में राबर्ट पार्क (त्वइमतज च्ंता) ने जेम बपजल नामक पुस्तक लिखी जो आधुनिक काल में लिखी हुई प्रथम पुस्तक है। 1926 में पार्क और वर्गेस ने मिलकर न्तइंद ब्वउउनदपजल नाम की पुस्तक का प्रकाशन किया जो आधुनिक नगरीय समुदाय के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्रदान करता है।

नगरीय समुदाय का अध्ययन करने के लिए नगरीय समाजशास्त्र की अवधारणा प्रस्तुत किया गया है जिसमें तीन मुख्य बातों की ओर ध्यान दिया जाता है।

पारिस्थिकी (Ecology) – नगरीय समुदाय की पारिस्थितिकी ग्रामीण समुदाय से अलग होती है। यहाँ एक छोटे से क्षेत्र में बहुत बड़ी आबादी का निस्तार होता है। यहाँ के लोग विभिन्न उद्योगों, कारखानों और व्यवसाय केन्द्रों में काम करते हैं और विकास के लिए अपने निजी या किराए के मकान में रहते हैं। नगरों में जनसंख्या का दबाव अधिक होते हैं। व्यवसायों में विभिन्नता होती है तथा आर्थिक स्तर में भी विभिन्नता होती है।

सम्बन्ध औपचारिक होते हैं। परिवर्तन एवं गतिशीलता अधिक होती है, जिसके कारण सामुदायिक विघटन अधिक होता है।

(2) जनांकिकी (Demography) –नगरीय समुदाय जनसंख्या का आकार बड़ा होता है। यहाँ की जनसंख्या में विविधता और गतिशीलता प्राप्त होती है। जनसंख्या का घनत्व भी बहुत अधिक होता है। और यहाँ के सम्पर्क औपचारिक होते हैं।

(3) आर्थिक विशेषताएँ (Economic Charectoristecs)

(1) यहाँ अर्थव्यवस्था का आधार औद्योगिक होता है।

(2) उद्योगों में विविधता एवं गतिशीलता होती है।

(3) नगरीय समुदाय का जीवन विविधताओं और जटिलताओं से पूर्ण होता है।

(4) श्रम विभाजन और विशेषीकरण पर आधारित ।

(5) व्यापारिक प्रतिस्पर्धा बहुत होता है।

(4) सामाजिक विशेषताएँ

(1) हम की भावना का अभाव होता है।

(2) निर्भरता की भावना बलवती होती है।

(3) कर्तव्य भावना का अभाव होता है।

(4) पड़ोस को कोई महत्व नहीं दिया जाता।

(5) घनिष्टता का अभाव होता है।

(6) संयुक्त परिवारों का कोई महत्व नहीं।

(7) नगरीय रीति रिवाजों पर आधारित।

नगरीय समाज वर्तमान समय में औद्योगिक क्रान्ति के बाद आरम्भ हुआ। उद्योगों के विकास के कारण शहरों का विकास हुआ। ग्रामीण जनसंख्या कुटीर उद्योगों को छोड़कर धीरे–धीरे नगरों में आकर बसने लगी। उद्योगों से मजदूरी इतनी अधिक नहीं मिल पाती है कि मजदूर किराए का घर लेकर निवास कर सकें। फलतः वह अपने लिए खाली जमीनो, नदियों के किनारे, गंदी नालियों के पास निवास के लिए स्थान ढूंढ लेता है और वहाँ बस्ती बन जाती है। इस बस्ती में न पानी की निकास की व्यवस्था होती है, न शौचालय की समुचित व्यवस्था होती है, सफाई और स्वच्छता से बहुत दूर बड़े शहरों में हजारों बस्तियाँ खड़ी हो जाती हैं, जिन्हें स्लम (Slum) या गन्दी बस्ती का नाम दिया गया है।

महात्मा गाँधी ने इसी समस्या के कारण ग्रामीण उद्योगों के विकास की बात किया था। नगरीय जीवन का आकर्षण, जनसंख्या वृद्धि और कृषि भूमि की कमी के कारण लोग शहरों की ओर पलायन करते हैं वहाँ के नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

विभिन्न बड़े शहरों में बसी इन बस्तियों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है और इन बस्तियों पर भी नियंत्रण भइया और दादा लोगों का है इसमें सर्व प्रथम नाम आता है बम्बई की चाल (बिंनस) यहाँ लोग बहुत ही घनी बस्तियों में निवास करते हैं जहाँ रोशनी पानी सफाई और स्वच्छता का तो नाम नहीं किन्तु एक ही कमरे में पूरा परिवार गुजर करता है। पानी के लिये लाइन लगाता है, शौचालय के लिए लाइन लगाता है और दबंगों को किराया या रंगदारी देता है। कानपुर की बस्तियाँ भी कम नहीं हैं। कानपुर और कलकत्ता की बस्तियाँ कारखानों के मालिकों और सरदारों ने बनवाया और किराया वसूलते हैं। इन बस्तियों में रहने वालों के लिए भी किसी प्रकार की नागरिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती हैं। बिना रोशनी पानी और धूप के हजारों परिवार इन बस्तियों में निवास करतेहैं।

गन्दी बस्तियों के कारण (Causes of Slums)

(1) गरीबी – गन्दी बस्ती में गरीब लोग ही निवास करते हैं। आजीविका की व्यवस्था में गाँवों से लोग पलायन कर शहरों में कहीं न कहीं मजदूरी करते हैं। इन मजदूरों के लिए कोई निवास की व्यवस्था नहीं होती इसलिए ये सिर छुपाने के लिए इन गन्दी बस्तियों का सहारा लेते हैं।

(2) मकानों का अभाव – अपना मकान बनाकर या किराए के मकान लेकर गरीब मजदूर सोच भी नहीं सकता। मकानों का अभाव भी शहरों में है जिसके कारण किराया मँहगा है। शहरों में जितने लोग आकर बस जाते हैं उनके लिए मकान की व्यवस्था करना किसी भी शासन या सरकार के बस का नही है। बड़ी–बड़ी कालोनियाँ बनी है और बन रही हैं उनमें यह गरीब मजदूर निवास नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास न खरीदने के लिए पैसा है और न किराया देने में समर्थ है।

(3) जनसंख्या विस्फोट– जिस तरह से भारत की जनसंख्या में वृद्धि हुई है उसके अनुरूप संसाधन नहीं तैयार हो पाए हैं। संसाधन तैयार करना किसी भी सरकार के बस का नहीं है। गन्दी बस्तियों में रहने के लिए यह जनसंख्या अनेक समस्याओं को जन्म देती है। गाँवों में खेती की भूमि की कमी होती जा रही है। जिसके कारण सभी ग्रामीणों का भरण पोषण सम्भव नही हो रहा है। फलतः गाँव का युवा शहरों की ओर पलायन करने के लिए बाध्य है। इस पलायन ने ही गन्दी बस्तियों को जन्म और विस्तार दिया है।

(4) पलायन – गाँवों से पलायन कर शहरों में रोजी रोजगार का प्रचलन बहुत पुराना हो चला है। औद्योगिकरण के साथ ही पलायन की समस्या का आरम्भ हुआ। प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त काम दे पाना गाँवों में सम्भव नहीं है। ग्रामीणों को गाँव में रोकने और स्वरोजगार करने के लिए अनेक योजनाएँ चलायी गयी लेकिन सारे का परिणाम ढाक के तीन पात ही रहा। ग्रामीण युवा कम से कम काम कर अधिक से अधिक लाभ के लिए शहरों की ओर पलायन करता है और दुख दरिद्र की निशानीयों में रहने ले लिए बाध्य हो जाता है।

(5) धारणा – गन्दी बस्तियों का आदी व्यक्ति कहीं और रहना भी नहीं चाहता। इन गन्दी बस्तियों की भी एक संस्कृति बन चुकी है जिसमें लोगों को आनन्द होने लगा है। जिनके पास साधन है, या जो साधन बनाने में समर्थ है वे इन्हें छोड़कर नहीं जाना चाहते इन गन्दी बस्तियों में भी श्दादाश और गुंडा संस्कृति ने जन्म ले लिया है जिससे यहाँ का जीवन शान्तिपूर्ण नहीं रह गया है। फिर भी लोग यही रहना उचित समझते हैं और अपनी झुग्गी झोपड़ी को अपना अधिकार मानते हैं।

गाँवों में रोजगार का अभाव

औद्योगिकरण के पूर्व गाँव का आदमी गाँव में ही काम करता था। सूत कातना, कपड़ों की बुनाई, लकड़ी और लोहे का काम सभी गाँव में ही हो जाता था। औद्योगिकरण के बाद कपड़ा लोहे के औजार, कृषियंत्र आदि बाजारों में सुन्दर और सस्ते मिलने लगे जिससे गाँवों में स्वरोजगार कम हुआ और पलायन बढ़ा। आज जिस स्थिति में गाँव हैं वहाँ अत्याधुनिक सामान, मनोरंजन के लिए टीवी, रेडियो और प्रकाश के लिए बिजली उपलब्ध है। ऐसे में गाँव के सामानों का निर्माण सम्भव नहीं है। अतः अर्थोपार्जन के लिए शहरों की ओर पलायन करना आवश्यक हो गया। शहरों की ओर पलायन के कारण गन्दी बस्तियॉ हर साल बढ़ती ही जा रही हैं।

प्राकृतिक आपदाएँ

कृषि कार्य विशेषकर प्रकृति पर आधारित है। सही समय परवर्षा हो तो कृषि कार्य में लाभ होता है। किन्तु वर्षों के अन्तराल में कभी बाढ़ कभी सूखा कभी ओला कृषि कार्य में क्षति उत्पन्न करता है। गाँव का गाँव तबाह हो जाता है। गरीबों के लिए रोजी रोटी का कोई साधन नहीं रहता तो लोग शहरों की ओर पलायन करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। गाँवों में कोई इस तरह के उद्योग नहीं है जहाँ लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके। वर्तमान समय में महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार योजना ने गाँव के लोगों को गाँव में रोकने का प्रयास किया। इस योजना में भी कहीं–कहीं भ्रष्टाचार का भूत आगे आ गया है फिर भी इस योजना के सही क्रियान्वयन से ग्रामीणों का पलायन रुक रहा है और रोका जा सकता है।

गन्दी बस्तियों के दुष्परिणाम

(1) व्यक्तित्व का विघटन –गन्दी बस्तियों में जीवन यापन करने वाले अधिकांश लोग अपने व्यक्तित्व को जटिल बना चुके हैं इनमें मद्यपान, ड्रग लेने, जुआ खेलने, सट्टा लगाने और आत्म हत्या जैसी अनके समस्याओं का पदार्पण हो चुका है जिसके कारण इन्हें तमाम तरह की बीमारियाँ लग जाती हैं जो अन्ततः परिवार के लिए एक बोझ बन जाता है।

(2) पारिवारिक विघटन –स्लमों में रहने वाले लोग अधिकांशतः एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं। उनका परिवार और बच्चे गाँव में रहते हैं। आय की कमी के कारण परिवार साथ नहीं रहता इसलिए पारिवारिक सुख के लिए मद्यपान, जुआ और वेश्यागमन का सहारा लेते हैं जिसके कारण परिवार की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं।

(3) सामाजिक विघटन –गन्दी बस्तियों में आनंद खोजने वाले लोग समाज और अपने समुदाय से अलग हो जाते हैं। वे अपने और गाँव की ओर ध्यान नहीं दे पाते और एक नयी संस्कृति की ओर उन्मुख हो जाते है जो पारिवारिक और सामाजिक विघटन का मुख्य कारण बनता है।

(4) नैतिक पतन – गन्दी बस्तियों में रहने वाले परिवारों और व्यक्तियों का नैतिक विकास सम्भव नहीं। यहाँ के किशोर दिन भर ताश जुए में मशगूल रहते हैं और बच्चे बीड़ी सिगरेट गुटका के आदी हो जाते हैं। बच्चे से बड़े तक सभी लोग इस अधःपतन के शिकार है न युवतियाँ सुरक्षित हैं और न युवा।

(5) प्रतिकूल स्वास्थ्य –अस्वस्थ वातावरण में निवास करने वाले हमेशा किसी न किसी बीमारी का शिकार हो जाते हैं। प्रदूषित पर्यावरण, स्वच्छता का अभाव, गंदा पानी यह सब मिलकर निवासियों में बीमारी पैदा करता है, जिससे आय दुष्प्रभावित होती है और अन्त में या तो वह पुनः गाँव की ओर लौट आता है या वही मर खप जाता है।

समस्या के समाधान के लिए सुझाव

(1) जनसंख्या वृद्धि पर रोक

(2) गाँवों में रोजगार सुविधाओं में वृद्धि

(3) सामाजिक सुरक्षा का विस्तार

(4) कृषि में उन्नति

(5) पर्याप्त मजदूरी

(6) सहकारी समितियों का विकास

(7) श्रमिक बस्तियों का निर्माण

(8) गन्दी बस्तियों स्वच्छता के लिए संसाधन उपलब्ध कराना

(9) नगर नियोजन।

प्रव्रजन (Migration) – मनुष्य आदिकाल सेखोजी प्रवृत्ति का रहा है। रोजी–रोटी के लिए वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता रहा है। कृषि युग के आरम्भ से जीवन में कुछ स्थायित्व अवश्य आया लेकिन उस समय भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकने और जीवन यापन की बेहतर सुविधा के लिए स्थान परिवर्तन करते रहे। आज औद्योगिकरण, शहरीकरण और पलायन बहुत तेजी से हो रहा है। शहरों में अनेक समस्याओं के होने के बावजूद वहाँ कार्य व्यवसाय और मजदूरी के अवसर अधिक प्राप्त होते हैं जिसके कारण नगरों पर दबाव अधिक बढ़ा है। प्रव्रजन के कारण अधिक समस्याएँउत्पन्न हो गयी हैं किन्तु बाध्य होकर रोजी–रोजगार के लिए शहरों की ओर जाने के लिए बाध्य है।

प्रव्रजन शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग रावन्स्टीन ने 1885 में किया। इससे स्पष्ट होता है यह शब्द और यह समस्या नयी नही बहुत ही प्राचीन है। भारत से बड़ी मात्रा में अंग्रेजों ने गुलामों को विदेशों में भेजा जो वहीं के रह गए हैं। तमाम ऐसे छोटे देश हैं जहाँ की आबादी में भारतीयों की उपस्थिति बहुत अधिक है।

प्रव्रजन की अवधारणा (Concept of Migration) – जनांकिकीय परिवर्तन अथवा जनसंख्या में होने वाले तीन प्रकार के होते हैंरू.

(1) प्रजनन

(2) मृत्युक्रम

(3) प्रव्रजन

हावले ने लिखा है–''सभ्य पुरुष वे हैं जो अधिक से अधिक गतिशील होते हैं । प्रव्रजन के कारण कई देश बन गए। अमेरिका भी प्रवासी लोगों के कारण ही इतना बढ़ा है। भारत में भी तमाम बाहरी प्रवासी निवास करते हैं। भारतीय लोगों ने मजदूरी के लिए जाकर कई छोटे देश बसा दिया जिसमें मारीशस चिली आदि प्रमुख हैं।''

अन्तर्गमग (Immigration) – बाहर से आकर दूसरे स्थान पर बसने की क्रिया कोअन्तर्गमन कहा जाता है। बर्हिगमन (Migration) अपने देश से दूसरे राज्य या देश में जाने को बहिर्गमन या Migration कहते हैं।

प्रव्रजन की परिभाषा (Definition of Migration)

(1) डेविड हीर ने अपने पारम्परिक निवास स्थान से अलग जाकर रहने को प्रव्रजन कहा है।

(2) वर्गेल ने कहा है कि प्रव्रजन मानव जनसंख्या के एक स्थान से दूसरे स्थान कोस्थानान्तरण को कहा जाता है।

(3) डॉ. एस.सी. दूबे के अनुसार, ''प्रव्रजन सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जनसंख्या का अन्तर्गमन या बहिर्गमन होता है।''

प्रव्रजन के सामान्य प्रकार (General Typs to Migration)

(1) आन्तरिक प्रव्रजन (Internal Migration) —एक राष्ट्र की सीमा के अन्तर्गत एक स्थान से दूसरे स्थान जाने की प्रक्रिया को आन्तरिक प्रव्रजन कहा जाता है। उदाहरण के लिए प्रत्येक राज्य के लोग दूसरे राज्यों में व्यापार, नौकरी या अन्य कार्यों से जाते हैं उसे आन्तरिक प्रव्रजन कहा जाता है। यह निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है—

(1) गाँवों से नगरों की ओर गमन

(2) एक गाँव से दूसरे गाँव की ओर गमन

(3) एक नगर से दूसरे नगर की ओर गमन

(4) नगर से गाँव की ओर गमन

(2) अन्तर्राष्ट्रीय प्रव्रजन (International Migration) — एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में जाने की प्रक्रिया को अन्तर्राष्ट्रीय प्रव्रजन कहा जाता है। वर्तमान समय में दोनों राष्ट्रों की सहमति से ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रव्रजन सम्भव है। बड़ी मात्रा में भारतीय दूसरे देशों में नौकरी और व्यवसाय के लिए जाते हैं जिनके लिए अब अनेक कठोर नियम बनाए गए हैं, जिससे गलत प्रव्रजन की समस्या न उत्पन्न होगी।

प्रव्रजन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Migration)

1. आर्थिक कारक

(अ) अनुकूल कारक (Pull Factors)

(1) भूमि का आकर्षण

(2) रोजगार के अवसर की उपलब्धता

(3) आमदनी के अच्छे अवसर

(4) दूसरे देश की आर्थिक सम्पन्नता तथा उच्च जीवन स्तर

(5) खुली अर्थ व्यवस्था

(ब) प्रतिकूल कारक (Push Factors)

(1) जीविकोपार्जन व साधनों का अभाव तथा मजदूरी कम होना

(2) रोजगार के अवसरों में कमीं

(3) निर्धनता, बेरोजगारी और निम्न जीवन स्तर।

2. जनसंख्या का दबाव

3. यातायात एवं संचार के साधन

4. प्राकृतिक एवं भौगोलिक कारक

5. सामाजिक कारक

(1) सामाजिक भेदभाव

(2) सामाजिक संस्थाओं से विरक्ति

(3) विवाह

(4) शिक्षा तथा बच्चों के उज्जवल भविष्य की संभावनाएँ

6. धार्मिक कारक रू धर्मस्थान, हज, धार्मिक मालाएँ आदि।

7. राजनैतिक कारक – युद्ध, समझौता

8. नगरीय आकर्षण

9. नौकरी या तबादले

भारत में प्रव्रजन के मुख्य कारक (Causres of Migration in India)

(1) जनसंख्या में वृद्धि – जनसंख्या में वृद्धि बहुत तेजी से हुई है जिसके कारण गाँवों में कृषि के योग्य भूमि बहुत कम लोगों के पास बची है। सामाजिक विघटन का प्रभाव गाँवों में भी है जिसके कारण एकाकी परिवारों की ही प्राथमिकता है। एकाकी परिवारों के कारण खेतों के कई टुकड़े हो गए जो अनार्थिक जोतों में शामिल है। इसलिए कृषकों के परिवार के युवा लोग पलायन के लिए बाध्य है।

(2) कुटीर उद्योगों का पतन – गाँवों में पहले कुटीर उद्योग होते थे जिससे काफी जनसंख्या इस काम में लग जाती थीं किन्तु अब ये सारे उद्योग बन्द हो चुके हैं जिसके कारण जीवन यापन के लिए शहरों की ओर पलायन हो रहा है।

(3) भूमिहीन कृषक– गाँवों में कृषि भूमि का वितरण इस प्रकार से हुआ है कि कृषि योग्य आंधी भूमि कुछ परिवारों में सीमित हो गयी है और आधी भूमि में गाँव के अधिसंख्य लोग रहते हैं। इसलिए भूमिहीनों का एक वर्ग सभी गाँवों में मिल जाता है। इनभूमिहीनों और कम जोत वाले परिवारों के भरण पोषण के लिए गाँव में पर्याप्त मजदूरी नहीं मिल पाती जिसके कारण पलायन के लिए लोग बाध्य हैं।

(4) ऋण ग्रस्तता – शादी ब्याह, बीमारी और अन्य उत्सवों के लिए कृषक कर्ज लेने के लिए बाध्य हो जाता है। सरकारी व्यवस्थाएँ अपूर्ण हैं। इसलिए महाजनों से ऋण लेकर ही

ग्रामीण अपना कार्य करता है और ऊँची सूद के कारण अपने बच्चों को कर्ज का भार देकर ही भरता है। पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले इस कर्ज को बंधुआ मजदूरी और अन्य समस्याओं को जन्म दिया है। ऋण से मुक्ति पाने के लिए ग्रामीण गाँवों से पलायित होकर शहरों की ओर भागता है।

(5) सामाजिक कुरीतियाँ – भारतीय ग्रामीण समाज में छुआछूत की समस्या बहुत अधिक है। कुछ लोग छोटी गलती के लिए भी सामाजिक बहिष्कार के शिकार हो जाते हैं जिससे गाँव में रहना दूर्भर हो जाता है। ऐसे लोग पलायन करने के लिए बाध्य होते हैं। छुआ–छूत यद्यपि धीरे–धीरे समाप्त हो चला है फिर भी कुछ लोगों को उसका शिकार होकर पलायन करना पड़ता है।

(6) संयुक्त परिवार – संयुक्त परिवरों में कुछ लोगों को बाहर जाकर धनार्जन करना आवश्यक हो जाता है। कुछ लोग खेती करते हैं कुछ लोग बाहर जाकर उद्योगों और व्यावसायिक कार्यों में लिप्त होने के लिए पलायन करते हैं। संयुक्त परिवारों में विघटन और अति अनुशासन के कारण भी कुछ लोग पलायन करते हैं इस प्रकार संयुक्त परिवार भी पलायन को प्रोत्साहित करने में भूमिका निभाता है।

कुछ लोग शहरों के जीवन के प्रति आकर्षण को भी पलायन का कारण मानते हैं किन्तु ऐसा है नहीं। गरीबी और गाँवों में रोजगार का अभाव ही मुख्य कारक है जिसके कारण लोग पलायन करते हैं।

जनजातीय समुदाय

जनजाति परिवारों का वह समूह है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जहाँ सभी सदस्यों की एक भाषा होती है और जो एक निश्चित भूभाग पर रहते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि जनजातियों का एक समूह है जो एक निश्चित भूभाग में निवास करता है तथा जिसकी एक भाषा होती है और जिसका एक नाम होता है ये अन्तर्विवाह जातियाँ होती हैं।

भारतीय मानवशास्त्री डॉ. एन. मजूमदार के अनुसार, ''परिवार या परिवारों का वह समूह है जिसका सामान्य नाम होता है जो एक निश्चित भूभाग में निवास करते हैं, सामान्य भाषा भाषी हैं तथा जिनके यहाँ विवाह या व्यवसाय आदि के सम्बन्ध में कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है।''

रेमान्ड अर्थ तथा जान पीटर मर्डोक भी जनजाति को एक व्यक्तियों और परिवारों का समूह मानते हैं जो एक भूखण्ड पर निवास करते हैं, एक भाषा बोलते हैं, एक प्रकार की परम्पराओं का पालन करते हैं और जो एक ही सत्ता को मानते हैं। इनका एक स्वाधीन राजनैतिक संगठन होता है जिसके आदेशों का पालन सभी को करना पड़ता है।

(1) जनजाति परिवारों का एक समूह है (A group of families) –इस बात से प्रायः सभी अध्ययन कर्ताओं में सहमति है कि जनजाति प्रजातीयता लक्षणों से युक्त, समान भावों का प्रयोग करने वाले परिवारों का समूह है। ये परिवार नातेदारी, सम्बन्ध प्रथा, परिवार और जनजाति के आधार पर एक समूह है।

(2) सामान्य भाषा (Common Language) –लगभग सभी जनजाति समूहा का एक भाषा होती है। कुछ छोटे जनजातीय समूह स्थानीय बोली का प्रयोग करते हैं। सभी जनजातियों की अलग–अलग भाषा होने के कारण इस देश में भाषाओं की संख्या बहुत अधिक है। प्रो. ए. आर. देसाई ने भारत को भाषाओं का अजायबघर बतलाया है।

(3) सामान्य संस्कृति (Common Culture) –प्रत्येक जनजाति एक सामान्य संस्कृति का पालन करते हैं। आस पास रहने वाले कई जनजातियों की सांस्कृतिक परम्परा एक जैसी है फिर भी अपनी संस्कृति का विरासत को बचाए रखने में ही अपनी भलाई समझते हैं। बिहार, झारखण्ड और उत्तर भारत के अन्य भागों में संथाल, मुण्डा, और ओरांव जातियाँ एक साथ रहती हैं फिर भी उनकी अपनी सांस्कृतिक मान्यता अलग–अलग है। झुरिया और मारिया जनजाति में भी कई सांस्कृतिक तत्व समान है किन्तु इनके युवागृहों की परम्पराएँ भिन्न है।

(4) सुनिश्चित भूमाग – जनजातियों का निवास एक निश्चित भूभाग पर होता है। शिक्षा एवं रोजगार के अवसरों के कारण जनजाति के लोग अलग रह रहे हैं किन्तु माटी के प्रति उनका लगाव है और अपने को उसी भूभाग का बतलाने में गर्व का अनुभव करते हैं।

(5) प्रायः प्रत्येक जनजातीय समूह अन्तर्विवाही होता है।

(6) सुरक्षात्मक संगठन – प्रत्येक जनजाति का अपना एक सुरक्षातंत्र होता है। कुछ जनजातियाँ जो मुख्यधारा में सम्मिलित हो चुकी हैं उनकी सुरक्षात्मक आवश्यकता नही है पर अभी भी अनेक ऐसी जनजातियाँ हैं जहाँ सुरक्षा के लिए आदिवासियों को अपने संगठन पर ही भरोसा है।

(7) राजनीतिक संगठन – प्रत्येक जनजातीय समूह का अपना राजनैतिक संगठन होता है। इस संगठन में गोत्र और आयु के आधार पर मुखिया को प्रधानता प्राप्त होती है, वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था लागू होने के बाद भी ये संगठन विद्यमान है। मुखिया की बातों को मानना प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व होता है।

(8) नाम एवं इतिहास – प्रत्येक जनजाति एक विशेष नाम से जाना जाता है जो इनके पहचान का आधार है। प्रत्येक जनजाति का अपना एक इतिहास होता है जो लोग सुनते हैं और उसके द्वारा निर्धारित सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक मान्यताओं का पालन करते हैं।

जनजातीय सामाजिक संगठन

मातृवंशी एवं बहुयांत्रिक समाज (Matrelinal and polyandrous Communities) आरंभ में समाज मातृवंशी था, टायलर, लीविस, हेनरी आदि विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है। माँ के नाम पर वंशजों के नाम रखे गए। आज भी ऐसे अनेक समुदाय हैं जहाँ मातृसंचालत्मक व्यवस्था है। वारी जनजाति आज भी मातृ सत्तात्मक एवं मातृस्थानिक है। माता के घर पर ही उसके बच्चे और पति रहते हैं। पूर्वज स्त्रियों की पूजा की प्रथा है। मातृसत्तामक होते हुए भी पुरुषों को रवास जाति में स्वामी का दर्जा प्राप्त है और उनके सम्मान में कोई कमी नहीं होती। इसी के अनुसार गारो जनजाति में भी पुरुष को स्त्री से

कम अधिकार प्राप्त है। विधवाओं के विवाह होते हैं किन्तु परिवार में भतीजे या दामाद से होते हैं। व्यभिचार की स्थिति में पुरुष को दंड अधिक दिया जाता है, महिलाओं को कम दंड दिया जाता है।

मातृवंशी समुदाय की विशेषता

(1) स्त्री का सम्मान

(2) स्त्री का एकाधिकार

(3) वंश नाम स्त्री के नाम से

(4) मातृस्थानक परिवार

(5) बहु पति परिवार

(6) लैंगिक समानता

बहुपति विवाह (Poly andry) ''एक स्त्री द्वारा पति की जीवित होते हुए भी दो या अधिक पुरुषों से विवाह को बहु पति विवाह कहा जाता है।''

कपाडिया (K.M. Kapadia) ने कहा है, एक ही समय पर दो या उससे अधिक पतियों से विवाह करना बहुपति विवाह है। प्रायः कई भाइयों के बीच एक पति के होने की प्रथा को भी मान्यता प्राप्त है। द्रोपदी का उदाहरण उसके लिए प्रायः दिया जाता है। आज भी पैतृक सम्पत्ति को एकजुट बनाए रहने के लिए पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा के कुछ गाँवों में कई भाइयों की एक ही पत्नी की बातें उठती हैं।

सामान्य विशेषताएँ

(1) सामान्य रूप से वे परिवार जहाँ कइ भाई एक स्त्री के पति हों और दूसरा वह जिसमें पतियों में आपस में रक्त सम्बन्ध आवश्यक न होना है।

(2) परिवार में कई पलियाँ हो सकती हैं लेकिन सभी पत्नियों पर सभी पुरुषों को अधिकार होता है।

(3) स्त्री स्वयं अपने पति का वरण करती है।

(4) सन्तान के पितृत्व का निर्धारण परिवार द्वारा न होकर समुदाय द्वारा किया जाता है। बच्चे पर माँ के अधिकार को प्राथमिकता दी जाती है।

परिवार एवं विवाह (Family and Marriage)

जनजातीय समुदाय में संगठन का मुख्य आधार परिवार एवं विवाह है। परिवार और विवाह दोनों मुख्य सामाजिक संस्थाएँ है जिनके आधार पर जनजातीय समुदाय का गठन निर्भर करता है। विवाह मानवीय समुदाय में एक सार्वभौमिक संस्था है जिसका अलग–अलंग समुदाय में अलग–अलग स्वरूप है।

विवाह की परिभाषा करते हुए (Wester Mark) वेस्टरमार्क लिखते हैं, ''विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला सम्बन्ध है जो प्रथा या कानून द्वारा स्वीकृत हों तथा संगठन में आने वाले दोनों पक्षों के बच्चों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का समावेश होता हो।''

लाबी के अनुसार, ''विवाह उन स्वीकृत संगठनों को प्रगट करता है जो यौन सम्बन्धों की संतुष्टि के बाद भी अस्तित्व में रहता है तथा बाद में पारिवारिक जीवन शैली की आधारशिला बन जाता है।''

गिलिन एवंगिलिन के अनुसार, ''विवाह एक प्रजनन मूलक परिवार की संस्थापना की सामाजिक मान्यता प्राप्त संस्था है।''

आदिवासी परिवारों में अलग–अलग आदिवासी समुदायों के अलग–अलग प्रकार से विवाह सम्पन्न होते हैं। आदिवासी समुदाय भी अब धीरे–धीरे एक विवाही होता जा रहा है। कुछ विशेष जनजातियाँ ही रह गई हैं जहाँ बहुत पति या बहुपत्नी विवाह की प्रथा विद्यमान है। विवाह एक सामाजिक संस्था है जिसका प्रभाव समुदाय के संगठनात्मक ढांचे पर पड़ता है। इस प्रकार किसी भी समुदाय के सम्बन्ध में जानकारी के लिए वहाँ की सामाजिक संस्थाओं परिवार विवाह आदि की जानकारी आवश्यक है। विवाह के आधार पर ही परिवारों का वर्गीकरण किया जाता है।

डार्विन (Darwin) के उदविकासीय सिद्धांत के अनुसार बर्बरता और जंगली अवस्था में परिवारों और विवाहों का कोई महत्व नहीं था किन्तु कृषि और पशुपालन के व्यवसाय के विकास के साथ परिवार का महत्व बढ़ा है। आज भी विवाह के सम्बन्ध में अनेक विभिन्नताएँ हैं। कुछ आदिवासी जातियों में आज भी प्राचीन विवाह का स्वरूप विद्यमान है किन्तु अधिकांश जनजातियाँ भी अपने विवाह और परिवार की संस्थाओं के स्वरूप में वर्तमान सामाजिक संरचना के अनुरूप परिवर्तन कर चुकी है और कर रही है।

विवाह के प्रकार

(1) एक विवाही परिवार (Monogamous Family) – एक पुरुष और एक स्त्री के मध्य सामाजिक मान्यता के अनुसार विवाह को एक विवाह प्रणाली कहा जाता है और इससे सम्बन्धित परिवारों को एक विवाही परिवार कहा जाता है। भारतीय समाज में मान्य सामाजिक एवं वैधानिक प्रणाली एक विवाह ही है जिससे कि भारत के अधिकांश परिवार एक विवाही है। कुछ लोग बहुपति या बहुपत्नी विवाह स्वीकार करते हैं किन्तु उन्हें समाज में सम्मान कम ही प्राप्त हो पाता है। विधवा या विधुर को द्विविवाह की अनुमति है किन्तु एक पत्नी या एक पति के जीवित रहते हुए दूसरा विवाह सामाजिक और वैधानिक रूप से मान्य नहीं है।

(2) बहुपत्नी विवाही (Polygamous Family) – एक पत्नी के जीवित रहते हुए भी दूसरी पत्नी से यौन सम्बन्धों या प्रजनन के साथ विवाह की प्रथा को बहुपत्नी विवाह कहा जाता है। आज भी कुछ आदिवासी जातियाँ और इस्लाम धर्म के अनुयायियों में प्रथा प्रचलित है किन्तु आर्थिक समस्याओं के कारण अब यह प्रथा धीरे–धीरे समाप्त हो रही है।

अब इस तरह के परिवार कुछ उच्च वर्गीय परिवारों और सामंतों में दिखाई देते हैं किन्तु साधारण बहुपत्नी प्रथा समाप्त हो रही है।

(3) बहुपति विवाही परिवार (Polyanderous Family) – जब कोई एक पत्नी एक से अधिक पतियों को स्वीकार करती है तो उसे बहुपति विवाही कहा जाता है। यह प्रणाली अनेक जनजातियों में विद्यमान है। कुछ जगहों पर परिवार की सम्पत्ति को कई खण्डों में विभाजित करने से रोकने के लिए भी बहुपति विवाह की प्रथा है।

(4) भातृ बहुपति विवाह (Fraternal Polyandry) – द्रोपदी के विवाह का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले कुछ लोग इस परिवार को मान्यता प्रदान करते हैं। एक स्त्री से रक्त सम्बन्धी कई भाइयों के विवाह को भातृबहुपति विचाह कहा जाता है। नीलगिरी पर्वत पर विद्यमान टोडा जनजाति में इस प्रकार के विवाह की प्रथा आज भी है।

(5) अभ्रातृबहुपति विवाह (Nonfraternal Polyandry) – एक स्त्री से दो या अधिक पतियों के साथ सम्बन्ध को अभ्रातृबहुपति विवाह कहा जाता है। इन्हें पतियों के मध्य कोई रक्त सम्बन्धी रिश्ता नहीं होता है। दक्षिण में इरावान परिवारों तथा मालावार के शिल्पी परिवारों में इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध होते हैं।

जनजातियों में नातेदारी व्यवस्था (Kinship System among Tribrs) –विवाह और परिवार की भांति ही जनजातीय समाज में नातेदारी की व्यवस्था की गयी है जो सामुदायिक संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। मानव आरम्भ काल से सुरक्षा, मानसिक संतुष्टि तथा सामूहिकता के लिए प्रयत्नशील रहा है। विवाह का स्वरूप चाहे जो भी हो यह महत्वपूर्ण है कि कुछ ऐसे सम्बन्ध है जिनके द्वारा व्यक्ति की कई आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार के सम्बन्धों में व्यक्ति और परिवार के हित का महत्वपूर्ण स्थान है नातेदारी को लोग अपना समझते हैं और आवश्यकतानुसार सुरक्षा, विकास तथा मानसिक संतुष्टि के लिए नातेदारों के सम्पर्क में रहने को आवश्यक मानते हैं।

मानवशास्त्रीय परिभाषा के आधार पर नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे सारे सम्बन्ध आते हैं जो रक्त सम्बन्धों और कुछ कल्पित सम्बन्धों पर आधारित है।

राबिन फाक्स के अनुसार, ''स्वजनों के मध्य स्थापित होने वाले सम्बन्धों चाहे वह रक्त सम्बन्धी हो या कल्पित हो नातेदारी कहा जाता है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नातेदारी व्यवस्था में तीन प्रकार की विशेषताएँ पायी जाती हैं–

(1) रक्त और विवाह से सम्बन्धित नातेदारी

(2) गोद लिए जाने वाले व्यक्ति से कोई रक्त सम्बन्ध नहीं होता फिर भी नातेदारी की श्रेणी में आता है।

(3) प्रथागत रूप से मान्य कुछ सम्बन्धों को नातेदारी के रूप में मान्यता दी जाती है।

नातेदारी का सामाजिक महत्व (Social Importance of Kinship) – अन्य सामाजिक संस्थाओं की भांति नातेदारी भी एक सामाजिक संस्था है जिसका अध्ययन आवश्यक है। समुदाय में व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए नातेदारी की व्यवस्था की गयी है। जिसमें परिवार के लोगों के साथ सम्बन्धों का निर्धारण किया गया है। किसका आदर करना है किससे दूरी बनाए रखना है किससे हास परिहास किया जा सकता है आदि सारी बातें नातेदारी व्यवस्था में सम्मिलित है। नातेदारी के सामाजिक महत्व एवं उसकी भूमिका को समझने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता है–

1. ब्राउन के अनुसार नातेदारी व्यवस्था का मुख्य कार्य विवाह तथा परिवार के रूप को व्यवस्थित करना है। जनजातीय समाज सरल है जिसके कारण कोई निश्चित नियम नहीं बनाए गए हैं। किन्तु यह निर्धारित है कि किससे सम्बन्ध रखना है किससे दूरी रखनी है या किससे हास परिहास किया जा सकता है।

2. सरल समाजों में व्यक्ति की स्थिति निर्धारण के लिए वंश की प्रतिष्ठा और शक्ति आधार माने जाते हैं। नातेदारी की सहायता से वंश के इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है। इस कारण नातेदारी की व्यवस्था का अध्ययन एक सामाजिक संस्था केरूप में करना आवश्यक है।

3. व्यक्ति के लिए नातेदारी व्यवस्था की आवश्यकता उस समय अधिक महसूस होती है जब वह किसी प्रकार के संकट में पड़ता है। किसी भी प्रकार की आपदा के आने पर नातेदारों द्वारा व्यक्ति और परिवारों की सहायता की जाती है। मरडाक ने नातेदारी को दूसरी रक्षा पंक्ति माना है। नातेदारी के कारण व्यक्ति कभी भी अपने को अलग और असहाय महसूस नहीं करता।

4. नतेदारी व्यवस्था को एक कुल या विस्तृत परिवार के रूप में देखा जा सकता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति या परिवार एक दूसरे के प्रति सम्मान करता है। व्यक्ति को वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में अनेक मानसिक व आर्थिक तनावों से गुजरना पड़ता है। जिसके कारण वह नातेदारों के बीच खड़ा होकर प्रसन्नता का अनुभव करता है और अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है।

5. नेलशन ग्रेवर्न के अनुसार, सामाजिक संगठनों के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वे सारे तत्व नातेदारी व्यवस्था में विद्यमान है। समाज में सुदृढ़ सामाजिक संगठन के लिए सुदृढ़ नातेदारी व्यवस्था आवश्यक है।

6. नातेदारी संज्ञाओं और रीतियों की सहायता से समाज के इतिहास को समझा जा सकता है। नैतिक और सांस्कृतिकविशेषताओं के कारण इसमें परिवर्तन की आशंका बहुत कम होतीहै।

इकाई–2

सामुदायिक संगठन (Communily Organization) – समुदाय वह स्थान है जहाँ (1) परिवर्तन की आवश्यकता (2) परिवर्तन प्रभावी होने के लिए प्रयास (3) तथा परिवर्तन में अवरोध सब कुछ उपस्थित होता है। सामुदायिक संगठन का अर्थ होता है लोगों कि आशा । इससे लोगों की संस्थाओं को बल प्राप्त होता है। किन्तु सबसे अलग यह है कि संगठन का अर्थ होता है शक्ति संगठन में एक शक्ति निहित होती है जो समुदाय को आगे ले जाने के लिए सर्वदा तैयार रहता है। सामुदायिक संगठन से तात्पर्य यह है कि जो काम लोग अपने सम्पूर्ण जीवन में नहीं कर पाते हैं उसको संगठन के माध्यम से पूर्ण कर लेते हैं। एरनेष्टो कोर्टस के इन विचारों से स्पष्ट है कि समुदाय शास्वत है वह तमाम शर्तों पर बना है किन्तु जब तक उसका एक सुदृढ़ संगठन नही होता तब तक समुदाय में परिवर्तन और विकास की सम्भावना कम हो जाती है।

समुदाय संसाधन उपलब्ध कराता है तथा अन्य सम्बन्धों की ओर ध्यान देता है उसमें कमियाँ और विरोधाभास भी हो सकते हैं। इसीलिए समुदाय के मुख्य अंग होते हैं–

(1) भौगोलिक क्षेत्र जिसकी सीमाएँ पारिभाषित होती है।

(2) सहभागी रुचियाँ और क्रिया–कलाप।

(3) व्यक्तियों का सामुदायिक हित के अन्तर्गत सामूहीकरण। इन तत्वों की चर्चा हमने अलग से किया है।

सामुदायिक संगठन कर्त्ताओं की नीतियाँ और रणनीति अलग–अलग हो सकती है किन्तु समुदाय के मुल्यों को ध्यान में रखकर ही कार्य किया जाता है। सारे संगठनकर्ता लोगों में विश्वास करते हैं, सभी अपने समुदाय को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करने वाले तत्वों के आधार पर कार्य करते हैं, और सारे सदस्य अपने समुदाय को आगे बढ़ाने की इच्छा रखते हैं। इन इच्छाओं की पूर्ति और आगे बढ़ाने के कार्य में संगठनकर्त्ता सहायता करता है। सामुदायिक संगठनकर्त्ता इस विश्वास पर कार्य करता है कि–

(1) लोग इस काम को कर सकते हैं।

(2) लोगों को इस कार्य को करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है।

(3) संगठनकर्त्ता ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है जिससे कि सभी लोग कार्य करने को तैयार रहें।

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि सामुदायिक संगठनकर्त्ता प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत समुदाय के लोगों की सहभागिता और सहयोग से समुदाय को संगठित करने का काम करता है और इसे संगठित और शक्तिशाली बनाने में योगदान देता है।

सामुदायिक संगठन के लिए हमें विशेष प्रकार के समुदायों के सम्बन्ध में जानकारी होना आवश्यक है। वर्तमान समय में कई प्रकार के समुदायों का अध्यग्न किया जाता है –

(1) रुचि पर आधारित समुदाय (Interest Community)

(2) आवश्यकता या लाभ पर आधारित समुदाय (Need or Benefit Based Community)

(3) क्रियात्मक मुद्रा क्रियाकलाप पर आधारित समुदाय (Action Community)

(4) लक्ष्य और अभिव्यक्ति समुदाय (Target or Response Communit)

(5) व्यापार समुदाय (Busines Community)

इस वर्गीकरण के आधार पर हम यह स्वीकार करते हैं कि समुदाय के सम्बन्ध में जो हमारी प्राचीन धारणा रही है उसमें दृढ़ प्रभावी और समरूपता लाने के लिए आशा और विश्वास के साथ प्रगति करना आवश्यक है। इसके लिए सामुदायिक संगठन की आवश्यकता अपरिहार्य है जिससे कि पुराने समुदायों में नयी जान लायी जा सके।

सामुदायिक संगठन के विभिन्न अर्थ हैं–

(1) सामुदायिक संगठन संगठित और असंगठित समुदायों के ढांचे और विकास के स्तर का अध्ययन करता है।

(2) इसके कार्यों में मुख्य रूप में समाजिक कल्याण के लिए नियोजन और अपने स्रोतों से साधनों में वृद्धि करना है।

(3) यह प्रणाली व रूप में निश्चित लक्ष्य और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नियमों का पालन करते हुए विकास का माध्यम है।

सामुदायिक संगठन की दृष्टि से समुदाय तीन प्रकार के हो सकते हैं–

(1) असंगठित समुदायरू जिस समुदाय में जिन संस्थाओं और एजेन्सियों की आवश्यकता होती है उनके न होने से समुदाय असंगठित होते हैं, जिसमें संगठन की आवश्यकता होती है।

(2) विघटित समुदाय ऐसे समुदाय जिनमें संघर्ष अधिक है जिनके कारण दैनिक जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(3) संगठित समुदाय वे समुदाय जिनमें निश्चित सुविधाएँ उपलब्ध है और जिसमें लोगों का जीवन नियमित रूप से चल रहा है।

सामुदायिक संगठन के माध्यम से स्थानीय नेतृत्व का विकास करने के लिए किस प्रकार से वैठक आयोजित की जाय, किस प्रकार के अनुसंधान किये जाये, नीतियों का किस प्रकार विश्लेषण किया जाय तथा सरकारी और व्यक्तिगत संस्थाओं से किस प्रकार से सहायता ली जाय आदि कार्य किए जाते हैं। इसी के साथ जो समुदाय किसी कारण कठिनाइयों का अनुभव कर रहे हैं उनके लिए विकास का मार्ग प्रशस्त करना तथा मुद्दों और समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास करना आदि कार्य किया जाता है।

सामुदायिक संगठन की परिभाषाएँ

(1) ''सामुदायिक संगठन समुदाय के लिए आवश्यक मूल्यों और उनकी प्राप्ति के लिए सर्वमान्य हल प्रस्तुत करने के लिए एक तकनीकी है।'' (सैन्डर्सन एण्ड पाल्सन)

(2) सामुदायिक संगठन का अर्थ होता है संतुष्टिपूर्ण और सफल सामाजिक सम्बन्धों के लिए लोगों की क्षमता का विकास करना है न कि किसी विशेष या पूर्वानुभूत सम्बन्धों का विकास करना है।

(3) सामुदायिक संगठन का सम्बन्ध किसी भौगोलिक क्षेत्र के लोगों के लिए विशेष या समग्र कल्याण हेतु सामाजिक संसाधनों की प्रभावशाली ढंग से उपलब्धि कराना है।

(4) सामुदायिक संगठन व्यक्तियों और समूहों के साथ कार्य करने की प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सामाजिक सेवाओं और उद्देश्यों की प्राप्ति करते हैं। मरे जी रास (Murray G Ross) ने सामुदायिक संगठन को एक प्रक्रिया माना है, जिसमें समुदाय अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संसाधन (बाहरी या आन्तरिक) एकत्रित करता है और इन आवश्यकताओं और उद्देश्यों के लिए अपनी सहभागिता प्रदान करता है इस प्रकार से कार्य करते समय इस समुदाय में विशेष प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए सहकारिता और सहभागिता की धारणाओं का प्रयोग करता है।

(5) व्यक्तियों और समूहों से पूर्ण सामुदायिक क्रिया प्रणाली में हस्तक्षेप के लिए यह व्यावसायिक परिवर्तन एजेण्ट के रूप में कार्य करता है और विशेष समस्याओं के समाधान के लिए प्रजातांत्रिक प्रणाली के अन्तर्गत संगठन को नियोजित रूप से कार्य करने में मदद करता है। इसमें दो मुख्य परस्पर सम्बन्धित पक्ष होते हैं–

1. एक क्रियात्मक प्रणाली के साथ अन्तर्क्रिया की एक प्रक्रिया है जो सदस्यों की पहचान, नियुक्ति और कार्य से सम्बन्धित है और जो प्रयासों में सुविधा के विकास के लिए संगठनात्मक और परस्पर सम्बन्धों को आगे बढ़ाता है।

2 समस्याओं के क्षेत्र की पहचान कारणों का विश्लेषण, योजना का निर्माण तथा कार्य को प्रभावशाली बनाने के लिए रणनीति विकसित करने और आवश्यक संसाधनों को उपलब्ध कराने का कार्य करता है।

सामुदायिक संगठन की कार्य प्रणाली (Methods of Community organization)

सामुदायिक संगठन को एक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है जिसमें समुदायों की सहायता सामान्य समस्याओं और उद्देश्यों की पहचान के लिए किया जाता है तथा संसाधनों की उपलब्धि करायी जाती है, दूसरी तरह से वह समुदाय द्वारा सामूहिक रूप से निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए रणनीति और मार्ग विकसित करने का कार्य सामुदायिक सगठन का है।

इन परिभाषाओं और विचारों के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि सामुदायिक संगठन में वे सारे कार्य आ सकते हैं जिसकी आवश्यकता एक समुदाय को हो सकती है। इसी आधार पर इसकी कार्य प्रणाली भी निर्धारित किया जा सकता है।

Madurai Institute of Social Sciences में आयोजित एक गोष्ठी के आधार पर सामुदायिक संगठन के कार्य निम्नलिखित रूप से विभाजित किए जा सकते हैं–

(1) योजना और तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों के आधार पर– (i) तथ्यों की जानकारी (ii) विश्लेषण, मूल्यांकन औन नियोजन को सामुदायिक संगठन की कार्य प्रणाली के अन्तर्गत लाया जाता है।

(2) सामूहिक निर्णय लेने और सहभागी कार्य प्रणाली– बैठकों का अभ्यास, सम्मेलन, समझौता तथा लोगों के द्वारा सामूहिक संगठन।

(3) संचार की कार्य प्रणाली शिक्षा, परामर्श, जनसम्पर्क औपचारिक रूप से लिखित संचार, औपचारिक और मौखिक संचार एवं साक्षात्कार।

(4) प्रगति और सामाजिक क्रिया पर आधारित कार्यप्रणाली– प्रगति, वैधानिक प्रगति, प्रक्रियात्मक सामाजिक क्रिया, प्रत्यक्ष कार्य एवं अधिकारिक कार्यक्रमों का संचालन।

(5) वित्तीय और कोषवृद्धि सम्बन्धी कार्य सरकारी संस्थाओं से धन की आपूर्ति, स्वयंसेवी संस्थाओं से कोष वृद्धि, संघीय वित्तीय अभियान, सामूहिक आय व्यय का निर्माण।

(6) प्रशासन सम्बन्धी कार्य प्रणाली– सामाजिक नियोजन से सम्बन्धित संगठन का प्रशासन, अभिलेखीकरण कार्य प्रणाली में कोई शून्यता नही है क्योंकि सामुदायिक संगठन के कार्य में कोई शून्यता नहीं है, यदि हम समझते हैं कि सामाजिक परिवर्तन में लोगों की सहभागिता आवश्यक है तो हमें हमारे उद्देश्य के अनुसार सहभागिता पर ध्यान देना होगा। यदि हम समझते हैं कि परिवर्तन के काम में लोगों को सम्मिलित करना है तो हमें ऐसी कार्य प्रणाली का उपयोग करना होगा जो दमनकारी मूल्यों पर आघात कर उस पर से पर्दा उठा सके।

प्रणाली किसी कार्य को सम्पादित करने वाली विभिन्न विधियों को कहते हैं। सामान्य अर्थों में प्रणाली किसी विशेष उद्देश्य तक पहुंचने के लिए साधन और कार्य को एक निश्चित दिशा में सम्पन्न कराने की विधि है। सामुदायिक संगठन के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अलग–अलग प्रकार की प्रणालियाँ विकसित की गई हैं। सामुदायिक संगठनकर्ता की मुख्य भूमिका एक व्यावसायिक सहायक (Professional Helper) और समस्या का समाधानकर्त्ता के रूप में मानी जाती है जिसमें वह लोगों की सहायता आवश्यकताओं को समझने के लिए सहभागी निर्णय लेने के लिए समूहों में आपसी संघर्ष का समाधान करने में सुविधा देने के लिए तथा सर्वसम्मत और प्रभावशाली ढंग से कार्यक्रमों को सम्पादित करने के लिए करता है। इस प्रकार सामुदायिक संगठनकर्ता को कई भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है। सामुदायिक संगठनकर्ता की विभिन्न भूमिकाओं के आधार पर विभिन्न प्रकार की प्रणालियों का उपयोग होता है।

Space Rengas wamy:

भूमिका	प्रणाली
1. मानव सम्बन्ध प्रशिक्षक (HumanResourceTrainer)	शिक्षा, संचार और समूह संगठन
2 सामाजिक प्रौद्योगिकीविद (Social Technologist)	तथ्य संकलन, विश्लेषण, सामुदायिक सर्वेक्षण आदि
3. सामाजिक परामर्श (Socail Advocate)	तथ्य संग्रह, विश्लेषण प्रत्यक्ष हस्तक्षेप, वैधानिक कार्यवाही आदि
4. समस्या समाधानकर्त्ता Problem Solver	मध्यस्थता, समझौता, नियोजन आदि
5. परामर्शदाता Consultant	प्रक्रिया परामर्शदाता, खोज परामर्शदाता

S- Rengaswamy के इन विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं के निर्वाह के लिए संगठनकर्त्ता विभिन्न कार्यप्रणालियों का अनुसरण करता है।

समाज कार्य और सामुदायिक संगठन (Social Work and Community Organization)

सामुदायिक संगठन की कार्यप्रणाली उद्देश्यों, मूल्यों, सम्भावना और निदान की समस्याओं द्वारा निर्धारित होता है। सामुदायिक संगठन समाज कार्य का एक मुख्य विषय है। समाज कार्य में व्यक्ति की सहायता की जाती है। व्यक्ति किसी समूह में रहता है। उस समूह में भी समस्याग्रस्त व्यक्ति की सहायता की जाती है, सामुदायिक संगठन में भी, समाजकार्य के सिद्धांतों के आधार पर व्यक्ति की सेवा की जाती है।

आज के युग में सामुदायिक संगठन एक अलग विषय के रूप में देखा जाता है जो समुदाय के विखराव और विघटन को रोकने के लिए काम करता है। समाज कार्य और सामुदायिक संगठन के उद्देश्य लगभग समान हैं–

(1) विकास के अवरोधों को दूर करना (Removal of Blocks to growth) (व्यक्ति, समूह और समुदाय के)

(2) पूर्ण क्षमता की अभिव्यक्ति (Release of full Potential) व्यक्ति समूह और समुदाय में।

(3) आन्तरिक संसाधनों का पूर्ण उपयोग (Full use of internal resousces) (व्यक्ति, समूह और समुदाय में)

(4) क्षमता का विकास (Development of Capacity to Manage ones own) (व्यक्ति, समूह और समुदाय में)

(5) एक समग्र इकाई के रूप में कार्य करने की क्षमता का विकास (Increasing the ability to function as integrated unit)

समाज कार्य और सामुदायिक संगठन सम्भावनाएँ
(Social Work and Commuity Organization Assumption)

समाज कार्य और सामुदायिक संगठन कुछ विशेष सम्भावनाओं पर चलते हैं, जैसे–

(1) व्यक्ति और समुदाय में कुछ निहित क्षमताए और विशेषताएँ होती हैं–समाजकार्य के सिद्धांतों में महत्वपूर्ण है व्यक्ति की क्षमता में विश्वास। प्रत्येक व्यक्ति इस बात की क्षमता और योग्यता रखता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके। इसी को आधार मानकर सामाजिक कार्यकर्ता कार्य करता है ठीक वैसे ही सामुदायिक संगठन व्यक्तियों समूहों और समुदाय की निहित क्षमता को आधार मानकर कार्य करता है और उसके उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहता है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति या समुदाय के पास अपनी समस्याओं के समाधान के लिए साधन होते हैं। Everyone/Community Posses resousces to deal with their Problems–प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय के पास संसाधन होते हैं। इन संसाधनों की ओर ध्यान दिलाना उनके सदुपयोग के लिए उचित मार्गदर्शन करना और आवश्यकतानुसार बाहर सेसंसाधन एकत्रित करने में सहायता करना ही समाज कार्य और सामुदायिक संगठन दोनों में होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में या शहरी क्षेत्रों में देखने में यही आता है किव्यक्ति व समुदाय अपने संशाधनों का सही उपयोग करना नहीं जानते।

(3) विकास के लिए अन्तर्निहित क्षमता (The Inherent Capacity for Growth) –प्रत्येक व्यक्ति या समुदाय में विकास के लिए क्षमता होती है। उसे अपनी क्षमता का ज्ञान नहीं होता। उदाहरण के लिए किसी ऐसे युवा लोग हैं जिनकी इच्छा होती है कि गाँव का विकास हो किन्तु कैसे हो, संसाधन कहाँ से आए, तकनीकी ज्ञान कहाँ से प्राप्त हो, उन सबकी जानकारी सामुदायिक संगठनकर्ता कराता है तो समुदाय के वही लोग आकर सारी समस्याओं का समाधान कर देते हैं। सहभागिता और सहकारिता के माध्यम से बड़े से बड़ा काम हो जाता है। व्यक्ति में भी क्षमता होती है किन्तु उसे केवल सही दिशा दिखलाने की आवश्यकता होती है।

(4) अपने स्वयं के कार्यों के प्रबंधन की क्षमता (The Ability to manage ones own affairs) – समुदाय, समूह और व्यक्ति सभी में योग्यता होती है कि वह अपना काम स्वयं अच्छी प्रकार से कर सके समाज कार्य और सामुदायिक संगठन उस योग्यता की पहचान और उसका सही उपयोग कराने में सहायता करता है।

सामुदायिक संगठन और समाज कार्य के मूल्य

लोगों के साथ काम करने के लिए कुछ मूल्यों की आवश्यकता होती है। ये मूल्य हैं–

(1) व्यक्तियों की अत्यावश्यक सम्मान और नैतिक गुणों तथा अपने कार्यों को स्वयं करने के लिए उसकी निहित क्षमतायें और संसाधन

(2) व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्रता का महत्व

(3) समस्त सामाजिक प्राणियों में विकास की क्षमता

(4) जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक समस्त भौतिक आवश्यकताओं को प्राप्त करने का अधिकार जिसके अभाव में जीवनयापन सम्भव नही है।

(5) अपने स्वयं के जीवन और पर्यावरण के विकास के लिए संघर्ष करने की व्यक्तियों की आवश्यकता।

(6) आवश्यकता और कठिनाइयों के समय में सहायता प्राप्त करने का अधिकार

(7) व्यक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति और उसके प्रति उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए एक सामाजिक संगठन

(8) व्यक्ति की प्रगति और विकास के लिए एक सामाजिक वातावरण

(9) अपने समुदाय के कार्यों में सहभागिता के लिए अधिकार और जिम्मेदारी (10) व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए विचार विमर्श, गोष्ठी और परामर्श की व्यावहातिरकता

(11) सभी कार्यक्रमों का मुख्य आधार स्वयं सहायता

सामुदायिक संगठन के सिद्धांत
(Principles of Community organization)

सामुदायिक संगठन और सामाजिक परिवर्तन (Community organization and social change)

समुदाय के कई पक्ष होते हैं। इन सभी पक्षों के द्वारा ही समुदाय का विकास होता है। विकास के लिए परिवर्तन की आवश्यकता होती है। समुदायों के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन माना जाता है। सामुदायिक संगठनकर्त्ता (Mobiliser Animator) के रूप में इन पक्षों में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। ये पक्ष हैं–

(1) प्रौद्योगिकी सम्बन्धी (Technological)

(2) आर्थिक (Economic)

(3) राजनैतिक (Political)

(4) संस्थागत या सामाजिक (Institutional or Social)

(5) आध्यात्मिक (Aestheitic Value)

(6) विश्वास (धारणात्मक) (Belief Conceptual)

सभी सामाजिक प्रणालियों या (सांस्कृतिक) में पक्ष विद्यमान होते हैं। छोटे से छोटे में भी ये तत्व विद्यमान होते हैं। अब इन सभी पक्षों की अलग–अलग व्याख्या समुदाय करेगे और जानने का प्रयास करेगें कि समाज में परिवर्तन किस प्रकार होता है।

(1) प्रौद्योगिकी पक्ष (Technological Dimension)– प्रौद्योगिकीय पक्ष का अर्थ समुदाय की पूंजी, यंत्र और कौशल पर्यावरण से होता है। यह मानव और प्रकृति दोनों में सामंजस्य उपस्थित करता है। यह विचार और व्यवहार भी है जो खोज करने, उपयोग करने और दूसरों को यंत्रों के सम्बन्ध में जानाकरी देता है। गरीबी के विरुद्ध आन्दोलनों में यह हथियार का कार्य करता है और समुदाय की क्षमता के विकास में पूर्ण योगदान करता है। व्यक्ति या परिवार के लिए प्रौद्योगिकी का अर्थ होता है आवास, फर्नीचर, तथा अन्य घरेलू उपकरण किसी संगठन के लिए इसका तात्पर्य होता है मेज कंम्प्यूटर कागज, फर्नीचर आदि। किसी समुदाय में प्रौद्योगिकी का अर्थ है सार्वजनिक शौचालय, पानी, सड़क आदि । संगठनकर्त्ता लोगों को शौचालय या कुंआ आदि सबके लिए प्रेरित करता है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए प्रौद्योगिकीय पक्ष बहुत ही सरल है क्योंकि लोगों को मोबाइल या रेडियो के खरीदने के लिए प्रेरित करना सरल है लेकिन घर में शौचालय बनवाना या किसी नए धार्मिक विश्वास के लिए प्रेरित करना कठिन है।

परिवर्तन में नया और पुराना दोनों एक साथ बना रहता है। ट्रैक्टर और हल, कार और बैलगाड़ी पत्र और मोबाइल काफी समय तक साथ–साथ चलते हैं बाद में प्रौद्योगिकी धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है और नयी आगे बढ़ जाती है। आखेट से कृषि, कृषि से उद्योग की ओर परिवर्तन संगठनकर्त्ता इन परिवर्तनों के माध्यम से परिवर्तन लाने का प्रयास करता रहता है। भारतीय गांवों में बाहर शौच करने की प्रवृत्ति में परिवर्तन लाकर शौचालयों के निर्माण की ओर प्रेरित करना भी सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है।

2. समूदाय का आर्थिक पक्ष (Economic Dimenson of Community)

आर्थिक पक्ष का अर्थ होता है उत्पादन के साधन तथा उपयोगी सामानों और सेवाओं का विस्तार करना । जिसे हम सम्पत्ति का नाम देते हैं। मानव के इतिहास में आर्थिक परिवर्तन सरल से जटिल की ओर होता रहा है। नए आर्थिक पक्ष ने प्राचीन पक्ष को तत्काल समाप्त नहीं किया बल्कि उसमें नयी प्रणालियाँ प्रवेश करती गयीं और पुरानी धीरे–धीरे समाप्त होती गयी। समाज के परिवर्तन इसी प्रकार होता है। प्राचीन काल की अर्थ व्यवस्था में अदला–बदली की व्यवस्था थी। उत्पादन के साधन कम थे इसलिए सामान के बदले सामान और सामान के बदले सेवा का प्रचलन था । उत्पादन के साधनों की वृद्धि के साथ जटिल अर्थ व्यवस्था ने जन्म लिया और मुद्रा, नोट, बैंक, लेखा आदि का जन्म हुआ। धीरे–धीरे उपहार आदि के लिए मुद्रा का प्रयोग होने लगा और अदला–बदली वाली अर्थ व्यवस्था समाप्त हो गयी। संगठनकर्ता इस परिवर्तित को पहचानता है और समुदाय के लोगों के सर्वसम्मति निर्णय से किसी नयी प्रणाली को अपनाने के लिए प्रेरित करता है।

3. समुदाय का राजनैतिक पक्ष – समुदाय के राजनैतिक पक्ष से तात्पर्य है शक्ति प्रभाव और निर्णयन के लिए विभिन्न मार्गों का चयन करना। इसमें सरकारों के प्रकार और प्रबंधन को प्रणाली भी आती है। असंगठित छोटे–छोटे समूहों द्वारा अनौपचारिक रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया भी इसी राजनैतिक पक्ष के अन्तर्गत समाहित होता है।

संगठनकर्त्ता को विभिन्न दलों के विभिन्न नेताओं की पहचान होनी चाहिए। किसी नेता में पारम्परिक या नौकरशाही की शक्ति हो सकती है किसी में करिश्मा करने की क्षमता हो सकती है। समुदाय के साथ काम करने वाले संगठनकर्त्ता को सामुदायिक एकता बनाए रखने के लिए वर्तमान सत्ता और निर्णयन की प्रणाली की सहायता करनी चाहिए। इतिहास यह बतलाता है कि पहले कोई मुखिया या प्रधान नहीं हुआ करता था। छोटे–छोटे समूह होते थे जिन्हें मानव विज्ञानियों ने ष्मुखिया विहीनष् समुदाय कहा है। इतिहास के विकास के साथ राजनैतिक प्रणाली में जटिलता आती गयी और शक्ति तथा प्रभाव में वृद्धि होती गयी। आज के समाज में धीरे–धीरे शक्ति और प्रभाव राजाओं और सामंतों से अलग प्रजातांत्रिक समाज को प्राप्त होने लगा। आज राष्ट्रपति से लेकर निचले स्तर तक के लोगों में शक्ति की समानता है।

सामुदायिक संगठनकर्त्ता समुदाय के सम्बन्ध में जानता है कि वहाँ कौन सा दल है प्रभावी है और वहाँ किस समूह या शक्ति का प्रभाव अधिक है। इन परिस्थितियों में कार्यकर्त्ता को एक विकास समिति का गठन करने में कठिनाई होती है किन्तु इस राजनैतिक जटिलता में भी सामुदायिक संगठनकर्त्ता लोगों को परिवर्तन के प्रति उत्साहित और प्रेरित कर लेता है।

4. समुदाय का संस्थागत पक्ष (Institutional Dimension of Community)

इस पक्ष में लोगों के कार्य करने, पारस्परिक अन्तर्क्रिया करने प्रतिक्रिया करने और दूसरों से कार्य करने और अन्तक्रिया करने की अपेक्षा करने जैसे तत्व आते हैं। विवाह,मित्रता जैसी संस्थाओं, व्यक्तियों की भूमिका, सामाजिक स्तर या वर्ग तथा मानव व्यवहार के अन्य तत्व भी इसी संस्थागत पक्ष के अन्तर्गत आते हैं।

इस पक्ष में समाज शास्त्रीय अध्ययन के लिए लोगों में एक दूसरे के प्रति क्रिया, से यह उनके निर्णय उनकी प्रत्याशाएँ तथा उनकी अभिव्यक्ति आते हैं। संगठनात्मक पहलू अधिक संगठित प्रभावशाली ढंग से संगठित और सक्षम पक्ष है। अंत प्रागऐतिहासिक काल में परिवार ही समुदाय या परिवार ही समाज था। परिवार ही सारी भूमिकाओं के निर्वाह के लिए पर्याप्त था। समाज में जटिलताओं की वृद्धि और बाहरी लोगों से सम्बन्धों से समुदाय का विस्तार होता गया और समुदाय और समाज के अन्तर्गत परिवार एक इकाई के रूप में करने लगा।

सामुदायिक संगठनकर्त्ता की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि यहाँ कौन–कौन सी स्थानीय संस्थाएँ हैं, इनकी क्या भूमिका है और सामाजिक अन्तर्क्रिया की कौन सी प्रणाली का उपयोग होता है। समुदाय में जब तक विद्यालय अस्पताल या अन्य संस्थाएँ नहीं है तब तक तो वह सरल समुदाय है लेकिन विद्यालय आदि संस्थाओं के साथ ही समुदाय की जटिलताएँ बढ़ जाती हैं।

5. आध्यात्मिक पक्ष (Aesthetic Values Deimension of Community)

अच्छे और बुरे सुन्दर और कुरूप, सही और गलत का निर्णय करना इस पक्ष में सम्मिलित है। बचपन से ही समुदाय में आदमी अच्छे–बुरे, सुन्दर और कुरूप की जानकारी प्राप्त करता है। यह सब व्यक्ति के सामाजीकरण से प्राप्त होता है न कि जन्म से।

समाज के मूल्यों में परिवर्तन लाना कठिन कार्य है। समुदाय के विकास के साथ इन मूल्यों में परिवर्तन होता है उसके लिए वाह्य प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। समाज में जब जटिलता बढ़ती है तो समुदाय में परिवर्तन होता है। प्रौद्योगिकी, सामाजिक संगठन आदि में परिवर्तन के साथ सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन का आरम्भ हो जाता है और सामुदायिक संगठन इस परिवर्तन को लाने में मुख्य भूमिका का निर्वाह करता है।

समुदाय के परिवर्तन के लिए उस समुदाय में निवास करना आवश्यक होता है तभी वह समझ पाता है कि काम कहाँ से और किस प्रकार आरम्भ किया जाय । कार्यकर्त्ता द्वारा में किसी भी परिवर्तन को लाने के पूर्व वहाँ के मूल्यों को ध्यान में रखना होता है। समुदाय उपस्थित मूल्यों को ध्यान में रखकर ही मूल्यों में परिवर्तन की बात की जा सकती है।

6. विश्वास – धारणात्मक पक्ष (Belief Conceptual Dimension of Community)

इसे एक तरह से धार्मिक पक्ष कहा जा सकता है। समुदाय के लोगों में विश्व के प्रति क्या धारणा है, उसमें व्यक्ति की क्या भूमिका है उसका कारण और प्रभाव क्या है आदि की जानकारी इस पक्ष में की जाती है। संसार की उत्पत्ति कैसे हुई, यह किस रूप में कार्य करता है और वास्तविकता क्या है, आदि इस पक्ष के मुख्य आधार है।

एक कार्यकर्ता के रूप में समुदाय के विश्वासों के साथ ही तादात्म्य बनाना आवश्यक होता है। ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है कि कभी भी इन विश्वासों के विपरीत न बोले। धर्म के कारण बड़े–बड़े युद्ध हो चुके हैं। यद्यपि सभी एक ईश्वर को मानते हैं किन्तु वे अपने–अपने ईश्वर को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इन मान्यताओं को स्वीकार करते हुए कार्यकर्त्ता काम करता है और समुदाय में परिवर्तन लाने में सफल हो जाता है।

इकाई–3

सामाजिक क्रिया
(Social Action)

समाज कार्य में सामाजिक क्रिया वह कार्य है जो सामाजिक कार्यकर्ता छोटी–छोटी अवांछनीय समस्याओं के समाधान के लिए करता है। आन्दोलन और सुधार दो ऐसे कार्य हैं जो बहुत पहले से ही सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए आयोजित किए जाते रहे हैं। समाज में व्याप्त या उत्पन्न छोटी या बड़ी समस्याओं के समाधान के लिए आन्दोलनों का आयोजन काफी प्राचीन समय से होता रहा है। समाज सुधार भी सामाजिक समस्याओं जैसे– बाल विवाह विधवा विवाह पुनर्विवाह, दहेज प्रथा आदि के लिए आयोजित किए जाते रहे हैं क्योंकि ये सारे काम समाज की समस्याओं के समाधान के लिए आयोजित होते रहे हैं। व्यावसायिक समाज कार्य में आन्दोलन और सुधार के स्थान पर क्रिया शब्द का उपयोग किया जाने लगा जिसमें सामाजिक कार्यकर्त्ता समुदाय की अनेक अवांछनीय दशाओं में सुधार के लिए समूह, या समुदाय को प्रेरित करता है। इसके अन्तर्गत उन समस्याओं के समाधान का प्रयास किया जाता है जिसमें समुदाय की आवश्यकताओं समस्याओं और अवस्थाओं में परिवर्तन की आवश्यकता का उपयोग होता है। आरम्भ में सामाजिक क्रिया का उपयोग सामुदायिक संगठन के एक सिद्धांत के रूप में हुआ करता था किन्तु अब समाज कार्य और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के लिए यह एक तकनीकी के रूप में कार्य करता है।

समाजिक क्रिया की परिभाषा (Definition of Social Action)

John Fitchने समाज कार्य में सामाजिक कार्य की परिभाषा 1940 में अपने एक लेख में किया है। ष्एक समूह द्वारा वैधानिक रूप से स्वीकृत क्रिया है जो वैधानिक नियमों और सामाजिक दोनों रूपों में वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लक्ष्य हेतु किया जाता है।ष समाज कार्य के विश्वकोष के अनुसार जो संस्थाओं, सामाजिक नियमों एवं सामाजिक पर्यावरण में व्याप्त गड़बड़ी को दूर करने के लिए परिवर्तन की आवश्यकता होती है उसीपरिवर्तन लाने की प्रक्रिया को सामाजिक क्रिया कहा जाता है। क्रेनेथ प्रे (Kennth Pray) के अनुसार, ऐसे सामाजिक नियमों और मूल्यों, सामाजिक स्थितियों में जिनके कारण व्यक्तियों को सामंजस्य एवं समायोजन में समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इसी परिवर्तन की प्रक्रिया को सामाजिक क्रिया कहा जाता है।

Fried Lander फ्रीडलैडर ने सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए किए जाने वाले सामूहिक प्रयास को सामाजिक क्रिया बतलाया है।

सैमफोर्ड सोलेन्डर (Samford Solender) के अनुसार, ''समाज कार्य के दर्शन, ज्ञान और कौशल के संदर्भ में व्यक्ति समूह और अन्तर्समूह के प्रयास को सामाजिक क्रिया कहते हैं। इसका उद्देश्य होता है सामाजिक नीतियों और सामाजिक ढांचों के कार्यों में नयी प्रगति और सेवाओं को उपलब्ध करना।''

सामाजिक क्रिया समाज कार्य के एक अंग के रूप में सामाजिक पर्यावरण को इस रूप में परिवर्तित करने का प्रयास है जिसके द्वारा हमें अधिक संतोषजनक जीवन प्राप्त होगा। इसका उद्देश्य व्यक्तियों, सामाजिक संस्थाओं, विधियों, रीति रिवाजों और समुदायों को प्रभावित करना ही वर्तमान सामाजिक व्यवहार और स्थितियों में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया है, जो शिक्षा प्रचार दबाव या परामर्श के द्वारा सामाजिक क्रिया द्वारा किया जा सकता है।

उपर्युक्त परिभषा के आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि सामाजिक क्रिया निम्नलिखित कार्यों को सम्पादित करता है–

1. सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन रू समाज में परिवर्तन होते रहते हैं। इसमें कुछ परिवर्तन आवश्यक होते हैं कुछ परिवर्तन अनावश्यक होते हैं। आवश्यक परिवर्तन में सहायता करने और अनावश्यक परिवर्तनों का विरोध करने के लिए सामाजिकक्रिया की आवश्यकता होती है। परिवर्तनों को नयी और सही दिशा देने के लिए भी सामाजिक क्रिया की आवश्यकता पड़ती है।

2. सामाजिक क्रिया द्वारा लक्ष्यों की स्वीकृति परिवर्तन की दिशा को एक निश्चित लक्ष्य या उद्देश्य की ओर ले जाने की प्रक्रिया को सामाजिक क्रिया कहा जाता है।

3. अन्य व्यक्तियों के प्रयासों का भी क्रियान्वयन समुदाय के अन्य व्यक्तियों द्वारा जो प्रयास किए जाते हैं वे भी सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत आते हैं। कार्यकर्त्ता केवल उन्हें सही दिशा देने का प्रयास करता है।

4. सामाजिक क्रिया की विधियाँ या उपकरण रू मुख्य रूप से शिक्षा, प्रचार, विनय या दबाव आदि का उपयोग सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत किया जाता है। इसमें कहीं भी दण्ड या निषेध आदि का प्राविधान नहीं होता।

5. उद्देश्यों और विधियों की प्रकृति रू सामाजिक क्रिया के उद्देश्यों के अनुरूप ही विधियों का उपयोग किया जाता है। विवके के आधार पर कभी–कभी अमान्य तरीकों का भी अनुसरण किया जाता है किन्तु किसी भी दशा में प्रतिबंध या दण्ड का प्राविधान सामाजिक क्रिया में नहीं होता।

6. उद्देश्यों की समाज में वांछनीयता और मान्यता रू सामाजिक क्रिया में कार्यकर्त्ता को हीवह निश्चित करना होता है कि किन उद्देश्यों और मान्यताओं को लेकर आगे बढ़ा जाय। समुदाय के हित व कल्याण के लिए ही उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं और उसमें समाज की सहभागिता होती है।

7. परिस्थितियों को विभिन्नता के अनुसार विधियों की विशिष्टता रू सामाजिक क्रिया की विधियाँ परिस्थितिजन्य होती हैं। किस परिस्थिति में किस विधि का उपयोग किया जाय यह सुनिश्चित करना कार्यकर्त्ता के ऊपर रहता है उसमें सामाजिक मान्यताओं और मूल्यों का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है।

8.सामाजिक क्रिया की समाज कल्याण से सम्बद्धता सामाजिक क्रिया का सम्बन्ध सामाजिक कल्याण से है किन्तु इसके अतिरिक्त भी अन्य कार्य इसमें सम्बद्ध किए जा सकते हैं। यह

आवश्यक नही है कि समाज कल्याण से सम्बन्धित कार्य ही किए जाये या उन्हीं के सिद्धांतों पर कार्य किया जाय।

सामाजिक क्रिया के उपागम एवं प्रकार

आर्थर डनहम के अनुसार सामाजिक क्रिया के निम्नलिखित प्रकार होते हैं–

(1) सामाजिक मध्यस्थता –समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने और उसके कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए कार्यकर्ता को मध्यरथ की भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। समुदाय में यदि कोई अव्यवस्था है तो अव्यवस्था फैलाने वाले तत्वों के बीच मध्यस्थता की आवश्यकता होती है। ताकि समाज को सुचारु रूप से चलाया जा सके।

(2) समाकलन संगठन –परिस्थितियों और समस्याओं के आकलन की आवश्यकता हमेशा बनी रहती है उसी आकलन के आधार पर संगठन किया जा सकता है। सामाजिक क्रिया के लिए एक संगठन की अपरिहार्यता को सभी लोग स्वीकार करते हैं किन्तु इस संगठन के निर्माण के लिए आन्तरिक और वाह्य संशाधनों, समस्याओं और स्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक होता है जो समाकलन के माध्यम से सम्पन्न होता है।

(3) सामाजिक विरोध – विरोध को समझौता का आधार माना जाता है समाज कार्य के सिद्धांतों में कभी–कभी यथोचित समाधान और समझौता के लिए विरोध आवश्यक हो जाता है। कार्यकर्त्ता द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों का समुदाय में भी विरोध होना सम्भव है। इसलिए इस विरोध का सामना करने के लिए सदा तैयार रहा जाता है और वही सही तकों के आधार पर अनुनय विनय, शिक्षा परामर्श आदि माध्यमों से समझौता हो जाता है।

(4) प्रक्रिया सामाजिक क्रिया –एक प्रक्रिया है जो समुदाय के साधनों, स्थितियों व क्षमताओं का आकलन करते हुए परिवर्तन लाने का कार्य करता है। साधनों और क्षमताओं के आधार पर ही सामाजिक परिवर्तन का कार्य सम्भव है। इसलिए ऐसी प्रक्रिया का ही अनुसरण किया जाता है जो उपलब्ध संशाधनों के आधार पर निर्धारित और सम्पादित किया जा सके।

सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ

(1) सामान्य एवं विशेष प्रकार से उसके रूप स्पष्ट किए जा सकते हैं।

(2) संस्था द्वारा उपलब्ध संसाधनों को अंगीकार करना और वाह्य संसाधनों को जुटाने का काम किया जाता है।

(3) कार्यक्रमों की स्पष्ट प्रक्रिया होती है।

(4) कार्यक्रमों को संचालित करने वाले विशेष समूहों को कार्यक्रम से सम्बन्धित सूचनाएँ उपलब्ध करायी जाती है।

(5) सामाजिक क्रिया संस्था के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत ही सम्पादित किया जाता है।

(6) कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए व्यावसायिक समाज कार्य में प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं की सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती है।

(7) दूसरी संस्थाओं के साथ सहयोग के आधार पर ही कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है।

(8) सम्बन्धित सरकारी संस्थाओं से कार्यक्रमों के संचालन के सम्बन्ध में सहयोग किया जाता है।

(9) सामाजिक क्रिया के कार्यक्रम को निर्धारित करने के लिए पारस्परिक विचार विमर्श किया जाता है और उसी आधार पर समय और रूपरेखा तैयार किया जाता है।

सामाजिक क्रिया के मुख्य तत्व (Components of Social Action)

फ्रीडलैंडर के अनुसार सामाजिक क्रिया के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं–

1. किसी सामूहिक क्रिया द्वारा ही सामाजिक क्रिया को संचालित किया जा सकता है। किसी एक व्यक्ति या समूह द्वारा ही सामाजिक क्रिया आरम्भ किया जाता है।

2. सामाजिक क्रिया जनसाधारण के हित में परिवर्तन लाने का कार्य करता है।

3.सामाजिक क्रिया में किसी भी प्रकार की हिंसा, या प्रतिबंध लादने जैसा कार्य नहीं किया जाता है। यह सामाजिक नियमों की सीमा में ही संचालित किया जा सकता है।

सामाजिक क्रिया के उद्देश्य

1. सामाजिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर सामाजिक नीतियों का निष्पादन किया जाता है।

2. सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा संकलित तथ्यों और सूचनाओं को समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करना तथा इसके निहितार्थ को स्पष्ट करना आवश्यक होता है।

3. समाज कार्य के सिद्धांतों, प्राविधियों और ज्ञान के आधार पर समस्याओं के समाधान का मार्ग निर्धारित किया जाता है।

4. सामाजिक समस्याओं के समाधान को गतिशीलता प्रदान करने के लिए सामाजिक संशाधनों को एकत्रित किया जाता है।

5. सामाजिक समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में जनसाधारण में जागरूकता, उत्पन्न किया जाता है जिससे कि सामाजिक स्वीकृति और समुदाय का समर्थन प्राप्त हो सके।

6. सम्बन्धित सरकारी संस्थाओं व जन प्रतिनिधियों से सामाजिक क्रिया सम्बन्धी कार्यक्रमों की स्वीकृति प्राप्त रखना।

7. सामाजिक क्रिया द्वारा निर्धारित नीति को एवं कार्यक्रमों को सरकारी नियमों में सम्मिलित कराना।

8. समाज कार्य के मूल्यों को मान्यता प्रदान करने के लिए समाज कल्याण सेवाओं एवं समाज कार्य के प्रयोग के लिए सरकारी संस्थाओं को प्रेरित करना।

सामाजिक क्रिया की विधियां एवं प्रविधियाँ (Methods and Techniques of Social Action)

अधिक प्रभावशाली एवं उपयोगी बनाने के लिए सामाजिक क्रिया के लिए विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। ये विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक अनुसंधान अध्ययन एवं उस पर आधारित कार्यक्रमों की संस्तुति सम्बन्धी विधि।

2. कार्यक्रमों की सफलता के लिए पर्याप्त जन समर्थन प्राप्त करने से सम्बन्धित विधियां।

3. सामाजिक नीतियों को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रत्यक्ष प्रयासों से सम्बन्धित विधियां।

डी. पाल चौधरी ने सामाजिक क्रिया को विधियों को निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया है–

1. अनुसंधान एवं तथ्यों का संकलन

2 जनसाधारण को जागरूक करना तथा समस्या के समाधान के लिए योजना का निर्माण करना

3. प्रमुख कार्यक्रमों और संस्थाओं से कार्यक्रम के सम्बन्ध में सम्पर्क स्थापित करना

4. सामाजिक सम्मेलन

5. सामाजिक शिक्षा

6. प्रचार प्रसार

7. विचार विमर्श

8. जनसमर्थन का आकलन करना

9. विभिन्न समूहों व संस्थाओं के साथ समन्वय स्थापित करना

10. पत्र पत्रिकाओं में लेख आदि लिखकर व्यापक प्रचार करना

11. सरकार द्वारा निर्धारित नियमों का कार्यान्वयन करना

12. सामाजिक नियमों का निर्धारण करना

13. वैयक्तिक एवं समूह समाज कार्य के सिद्धांतों एवं तकनीकों का अनुसरण करना ।

सामाजिक क्रिया समस्त व्यावसायिक समाज कार्यकर्ताओं के दायित्व का बोध कराता है जिसके अनुसार वह विभिन्न स्तरों पर कार्य करता है–

1. सामाजिक कार्यकर्त्ता एक आम नागरिक की भांति किसी भी कार्यक्रम या आन्दोलन में भाग ले सकता है जो उसके व्यावसायिक नियमों के अनुकूल हों।

2. समाज कार्यकर्त्ता किसी भी व्यावसायिक संस्था या संगठन के साथ अपने को जोड़ सकता है।

3. समाज कार्यकर्त्ता एक व्यक्ति के रूप में या एक व्यावसायिक के रूप में अपने कार्यों को सम्पादित कर सकता है।

4. व्यावसायिक व्यक्ति के रूप में एक समाज कार्यकर्ता अपने को किसी भी राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक संगठन से जोड़ सकता है जहाँ अपनी दक्षता का उपयोग कर सके।

इस प्रकार सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत कोई भी समाज कार्यकर्त्ता वर्तमान सामाजिक समस्याओं, अंधविश्वासों आदि के समाधान के क्षेत्र में कार्य कर सकता है और समस्याओं. के समाधान के साथ–साथ नीति निर्माताओं को तत्सम्बन्धी नियम बनाने के लिए प्रेरित कर सकता है।

भूदान और ग्रामदान आन्दोलन

महात्मा गांधी ने धनी और गरीब की असमानताओं की अर्थव्यवस्था को अनेक समस्याओं का कारण माना था। इसी धनी और गरीब के बीच की खाई को पांटने के लिए विभिन्न प्रकार के कई आन्दोलन विश्व के इतिहास में देखने को मिल जाएंगे। कहीं ये आन्दोलन खूनी और हिंसात्मक रहे। महात्मा गांधी ने इसके लिए भारत में अहिंसक आन्दोलनों का सूत्रपात किया। महात्मा गांधी के शब्दों में, ष्अमीर के यहाँ वह भी चीजें पड़ी हुई हैं जिसको उसे आवश्यकता नही है, उसके यहाँ वे खो जाती हैं। विगड़ जाती है। जबकि इन्हीं चीजों की कमी के कारण करोड़ों लोग यहाँ–वहाँ भटकते हैं, भूखो मरते हैं और ठंड से सिकुड़ते हैं.....कि इसे सन्तोष नहीं होता। कंगाल भी करोड़पति अरबपति होना चाहता है। ऐसा नहीं है कि पेट भरने से ही गरीब आदमी संतुष्ट हो जाय, ऐसा नहीं है फिर भी उसे भरपेट भोजन पाने का हक पाने के लिए सक्षम बनाना समाज का कर्त्तव्य है।

भूदान आन्दोलन गांधी जी के इन्हीं शब्दों का व्यावहारिक रूप बन कर सामने आया। जिसके पास है उससे छीनकर नहीं मांगकर जिसके पास नही है, या जिसकी उसको अधिक आवश्यकता है उसे देना ही भूदान आन्दोलन है। भूदान आन्दोलन सामाजिक क्रिया का सफल उदाहरण है जिसने आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। महात्मा गांधी के सर्वोदय सिद्धांत को व्यावहारिक रूप उनके आध्यात्मिक शिष्य विनोबा भावे ने भूदान आन्दोलन के रूप में दिया है। महात्मा गांधी ने सर्वोदय सिद्धांत की व्याख्या रास्किन के . श्अन टू. दिस लास्टश के आधार पर कहा ष्मैं सर्वोदय के सिद्धांतों को इस प्रकार समझता हूँ कि (1) सबकी भलाई में ही हमारी भलाई है। (2) वकील और नाई दोनों के काम की

कीमत एक सी होनी चाहिए क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है। (3) सदा मेहनत मजदूरी का अर्थात् किसान का जीवन सच्चा जीवन है।

भूदान यज्ञ – विनोबा भावे ने भूदान को यज्ञ के रूप में स्वीकार किया। 1951 में तेलंगाना के पंचम पाली गांव में नक्सल वादियों का आन्दोलन बढ़ रहा था। गांव के बड़ेकिसानों के विरुद्ध छोटे और भूमिहीन किसान आन्दोलित हो गए थे। विनोबा भावे को इस आन्दोलन के भावी दुष्परिणाम को समझने में समय नहीं लगा। यदि विनोबा भावे वहाँ न जाते तो नक्सलियों द्वारा बड़े किसानों के विरुद्ध आन्दोलन का स्वरूप बहुत उग्र हो जाता क्योंकि उस समय नक्सलियों के आन्दोलन का मुख्य नारा था धन और धरती बंट के रहेगी। साम्यवादियों द्वारा समर्पित यह आन्दोलन आज उग्र रूप ले चुका है किन्तु उस समय विनोबा भावे जी न आन्दोलन को रोकने के लिए उस गांव की यात्रा किया। इस यात्रा में काफी सफल भी रहे। बड़े किसानों से 50 एकड़ जमीन लेकर विनोबा ने गरीब किसानों में वितरण कराया। इस कार्य से जहाँ एक तरफ नक्सलवादियों के आन्दोलन से बचाव हुआ वहीं विनोबा भावे को इसकी सफलता से यह शिक्षा मिली कि यदि इस तरह से भूमि लेकर गरीबों को वितरित कर दिया जाय तो गरीबी अमीरी के बीच की खाई को कम किया जा सकता है।

भूदान के लिए मुख्य सिद्धांत यह अपनाया गया कि ष्सबै भूमि गोपाल कीष् द्य सारी भूसम्पदा ईश्वर की देन है। ईश्वर ने प्राकृतिक सम्पदा सबके लिए दिया है। उस पर कुछ लोग हावी हैं और अधिकांश लोग इससे लाभान्वित नही हो पाए हैं। जय प्रकाशनारायण ने इसको दान नहीं माना। उनका विचार था कि सारी भूमि जब ईश्वर ने दिया है तो उसपर सबका समान अधिकार होना चाहिए। बड़े किसान, अमीर लोग और पूंजीपति केवल इस भूमि के ट्रस्टी हैं। ट्रस्टी होने के नाते गरीबों में भूमि का आवंटन होना चाहिए और इस भूमि को उसे दे देना चाहिए जो उसका सही उपयोग करते हुए अपना जीवन यापन कर सके।

आचार्य भावे ने इसी प्रत्याशा में भूदान को एक यज्ञ के रूप में आरम्भ किया कि लोग अपनी अधिक भूमि को गरीबों में बांट देंगे। जिससे कि गरीब भी आराम से अपनी जीविका निर्वाह कर सके। इस यज्ञ के फलस्वरूप पूरे भारत में लाखों एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त हुआ।

भूदान आन्दोलन से प्राप्त भूमि अधिकांशतः बंजर और पथरीली रही। जिस प्रकार से भिखारी लोगों को घरों में खराब अनाज दिया जाता है उसी प्रकार बड़े किसानों जमींदारों और पंचायतों ने वह भूमि दान में दिया जिस पर कुछ भी पैदा नहीं होता। ऐसी भूमि को गरीबों में बांटना भी दुष्कर था । आन्दोलन को तो सफल माना जा सकता है किन्तु असमान अर्थव्यवस्था और भूमि व्यवस्था के क्षेत्र में इस आन्दोलन का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा।

भूदान आन्दोलन की कार्यविधि रू आन्दोलन में जो भूमि प्राप्त हुई उसकी व्यवस्था के लिए कुछ समितियों और संस्थाओं का गठन किया गया। आन्दोलन का बहुत अच्छा अनुभव नहीं रहा फिर भी इसमें व्यवस्था के लिए कुछ रास्ते अपनाए गए–

1. अखिल भारतीय सेवा संघ की स्थापना की गयी जो केन्द्रीय स्तर पर भूदान से प्राप्त भूमिका रख रखाव एवं वितरण करने के लिए उत्तरदायी संस्था के रूप में स्थापित किया गया।

2. प्रान्तीय स्तर पर भी भू दान समितियों का गठन किया गया जिसे भूमि के रख रखाव व वितरण का उत्तरदायत्वि दिया गया।

3. समितियों के कार्यकर्ता किसी न किसी संस्था से सम्बद्ध थे इसलिए उन्हें कोई वेतन भूदान समिति से नहीं दिया जाता था।

4. जिले स्तर पर भी भूमिदान समितियों का गठन किया गया जो जनपद स्तर पर भूमि के वितरण और रखरखाव के लिए उत्तरदायी थी।

5. भूदान में प्राप्त भूमि को गरीबों को वितरित करने का प्राविधान किया गया तथा इसमें यह शर्त रखा गया कि दस वर्षों तक इस भूमि का हस्तांतरण नहीं किया जा सकेगा।

भूदान आन्दोलन से उम्मीदे रू पहली सफलता से यह आशा बंधी थी कि बड़े किसान अपनी अधिक भूमि में से कुछ हिस्सा गरीबों के हित के लिए दे देंगे जिससे कि गरीबों को कृषि कार्य करने और अपनी जीविका चलाने के लिए काम मिल जाएगा। उसआन्दोलन से बहुत बड़े विद्वान, विचारक और नेता भी निःस्वार्थ भावना से जुड़ने लगे। जय प्रकाश नारायण जैसे लोग भी इस आन्दोलन में निःस्वार्थ भाव से जुड़े। इस आन्दोलन के बाद ये समयदान, श्रमदान आदि को भी महत्व दिया गया। बहुत से लोगों ने इस कार्य में अपना योगदान दिया। इस आन्दोलन से निम्नलिखित आशाएँ थीं–

1. आन्दोलन से भूमिहीन कृषकों को कृषि योग्य भूमि प्राप्त होगी जिससे उनका जीवन स्तर उन्नत होगा।

2. भूदान तथा अन्य प्राप्त सम्पत्तियों से देश में समानता बढ़ेगी और गरीबी–अमीरी के बीच की खायी पटेगी।

3. बेकार पड़ी भूमि का सदुपयोग होगा और उससे कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी।

4. गांव के विकास में सहायता मिलेगी गरीब किसानों के घरों में खुशी आएगी।

5. अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार दूर होगा।

भूदान आन्दोलन का मूल्यांकन

1. सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों को यह व्यवस्था बहुत ही खराब लगी जिसके कारण उन्होंने भूमि वितरण में जगह–जगह अड़ंगा डालना शुरू कर दिया।

2. दान से प्राप्त भूमि घटिया एवं अनुपजाऊ रही जिसमें उत्पादन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

3. गरीबों की अधिक जनसंख्या के कारण भी भूदान आन्दोलन का कोई बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा।

4. लक्ष्य के सापेक्ष बहुत कम भूमि प्राप्त हुई।

ग्रामदान आन्दोलन – ग्रामदान कोई आन्दोलन नहीं बल्कि यह सामाजिक क्रिया के रूप में कुछ गांवां के लोगों के द्वारा बनाई हुई व्यवस्था जो गांधी और सर्वोदय के सिद्धांतों को गांव में कार्य रूप में परिवर्तित करने के लिए अपनाया गया। गांधी और विनोबा गांवों को एक समग्र इकाई के रूप में देखना चाहते थे जिसकी अपनी प्रशासनिक प्रणाली हो, अपनी पाठशाला हो, अपना न्यायालय, अपना विद्यालय हो और कम से कम सरकारीहस्तक्षेप हो। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ मैनग्रोथ नाम के उत्तर प्रदेश के एक गांव में हुआ, जिसमें किसानों ने सामुहिक खेती का उदाहरण प्रस्तुत किया। उनकी अपनी सिंचाई व्यवस्था, अपना स्कूल अपनी पंचायत व्यवस्था आदि से गांव का उत्तरोत्तर विकास हुआ।

विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन के कारण इसका क्षेत्र व्यापक हुआ और इसे ग्रामदानका नाम दिया गया। वे गांव जहाँ भूदान में अधिक भूमि प्राप्त हुई और जहाँ के लोग अपने गांव के विकास में सद्भावना, सहभागिता, सहयोग, सहअस्तित्व और स्वावलम्बन को महत्वपूर्ण मानते थे वे गांव ग्रामदानी ग्राम कहलाते हैं। भूदान आन्दोलन के कारण इसका प्रसार उड़ीसा तथा अन्य राज्यों में बहुत तेजी से हुआ। उत्तर प्रदेश में इस कार्यक्रम को इतना बल नहीं मिला यद्यपि इसका आरम्भ वहीं मिला था।

बाद में विनोबा भावे के कार्यक्रमों में इसे शामिल किया गया ओर ग्रामदान भूदान आन्दोलन के एक रूप में कुछ गांवों में बहुत सफल रहा। इन गांवों में सहयोग, समानता और स्वावलम्बन को महत्व दिया जाता है और प्रतिस्पर्धा और शोषण का बहिष्कार किया गया है।

नेतृत्व (Leadership)

सामान्य जन द्वारा किसी विशेष प्रकार के वस्त्र या भेष भूसाधारी राजनैतिक या आध्यात्मिक व्यक्ति को नेता समझा जाता है। वास्तव में नेतृत्व शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं। नेता वह है जो किसी विशेष क्षेत्र में दक्ष एवं योग्य हो और समुदाय के लोगों को उससे लाभान्वित कर सके। एक तरह से कहा जाय तो नेतृत्व वह व्यवहार है जो दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करता हों।

किम्बलयंग श्नेतृत्व को एक महत्वपूर्ण और सम्मानित सामाजिक स्थिति बताया है। नेतृत्व वही कर सकता है जिसमें दूसरे के व्यवहार को नियंत्रित करने, प्रदर्शन करने एवं आदर्श व्यवहार को सुनिश्चित करने की क्षमता हो।

नेतृत्व के प्रकार (Types of Leader ship)

1. राजनैतिक नेतृत्व : प्रत्येक क्षेत्र में कुछ ऐसे लोग मिल जाते हैं जो किसी न किसी राजनैतिक दल से पभावित है। शहरों के नुक्कड़ या गांव के चौपाल में ऐसे लोग प्रायः अपने राजनैतिक दल की बात करते हैं और उनकी इच्छा चुनाव लड़कर सत्ता तक पहुंचने की होती है। जिले स्तर पर अधिकारियों और कर्मचारियों से इनकी सांठ–गांठ होती है जो

लोगों के कार्यों को कराने में मददगार होता है और यही उनके आय का स्रोत भी है। इन्हें नौकरी, व्यवसाय या खेती से कोई मतलब नही होता।

2. कूटनीतिज्ञ (Diplomat)– ऐसे नेता जो सरकार का प्रतिनिधित्व विदेशों में करते हैं। ये बहुत ही दक्ष एवं विदेश नीति के जानकार होते हैं और अपने देश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

3. नौकरशाह (Beareucat) – सरकारी कार्यों को सम्पादित करने के लिए नौकरशाहों की आवश्यकता होती है। नौकरशाह ही सरकार चलाते हैं, सरकारी नीतियों के निर्माण, क्रियान्वयन की जिम्मेदारी इन्हीं पर होती है।

4. आन्दोलनकर्त्ता (Agitators) – अभी यह देश आन्दोलनों से प्रभावित हैं। लोकपाल आन्दोलन, अन्ना का आन्दोलन, बाबा रामदेव का आन्दोलन और अभी हाल में नेतृत्व विहीन भावनात्मक आन्दोलन, इन आन्दोलनों से करोड़ों मानव दिवस का नुकसान हुआ। इसी में केजरीवाल जैसे भी नेता हैं जो शुद्ध रूप से किसी की बात न मानने वाले नेता हैं। जितना समय श्रम और सम्पत्ति इन आन्दोलनों में खर्च हुआ है उससे बहुत सा काम हो सकता था किन्तु ये स्वयं नेता आन्दोलनो में विश्वास रखते हैं और उसकी सफलता असफलता का आंकलन करते रहे हैं।

5. सिद्धांतवादी (Theorist) – इस प्रकार के नेता अपने सिद्धांत पर विश्वास करते हैं और उसी के प्रचार प्रसार के लिए कार्य करते हैं। उनके कुछ स्रोता भी होते हैं।ये अपने आदर्शों से अलग नहीं हो सकते। इनमें व्यावहारिकता का पूर्ण अभाव होता है।

6. समाज सुधारक (Social Reformist) – समाज सुधारक समाज के दुख दर्द से पीड़ित होकर समाज के लिए कुछ करने को इच्छुक होता है। राजाराम मोहन राय, विनोबा भावे, महात्मा गांधी तथा दयानंद सरस्वती जैसे नेताओं ने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं विकारों को समाप्त करने के लिए कार्य किया। आज भी कुछ नेता हैं जो इन कार्यों को कर रहे हैं।

7. प्रजातांत्रिक नेतृत्व (Democratic Leadership) – जनमानस की आवश्यकताओं, सुविधाओं, असुविधाओं को ध्यान में रखकर काम करने वाले नेताओं को प्रजातांत्रिक नेता कहा जा सकता है। इनमें कुछ प्रजातांत्रिक आधार पर चुने हुए समुदाय या समूहों के प्रतिनिधि होते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व हमेशा जनमानस की सेवा में लिप्त रहता है।

नेतृत्व के कार्य (Techniques of Leadership)

सामाजिक क्रिया और समाज कार्य के लिए नेतृत्व की पहचान करना आवश्यक है, क्योंकि समुदाय या समाज में जो भी कार्य करने है उसके लिए नेतृत्व का विकास करना आवश्यक है। सही नेतृत्व का विकास करना ही समाज कार्य का मुख्य कार्य है वैसे तो कुछ नेता समाज कार्य के लिए बहुत अच्छे नहीं माने जाते। दूसरे नेता वे होते हैं जो परिस्थितिजन्य होते हैं। परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति में नेतृत्व के गुण अपने आप विकसित हो जाते हैं और वह काम अच्छी प्रकार से करने में समर्थ होता है। समाज कार्य के विभिन्न आयामों के लिए विभिन्न नेताओं की आवश्यकता होती है। कोई कृषि कार्य में अच्छा हो सकता है तो

कोई खेलकूद में अच्छा हो सकता है। किसी में संगठन क शक्ति ृ हो सकती है तो कोई प्रचार प्रसार में रुचि ले सकता है। इस प्रकार परिस्थितियों का एजेंसी के सिद्धांतों के अनुरूप नेतृत्व का विकास करना समाज कार्य में आवश्यक होता है। जो कार्य किया जाना है उसके अनुरूप नेतृत्व का विकास करना आवश्यक है। समुदाय में वर्तमान नेतृत्व से कार्य नहीं चलता।

नेतृत्व के विकास के लिए यह देखना आवश्यक है कि क्या कार्य किया जाना है उसके लिए किस प्रकार की विशेषता या क्षमता होनी चाहिए। अपेक्षित योग्यता और गुण वाले नेतृत्व का विकास करते समय यह भी देखना होता है कि समूह या समुदाय में कितने लोग उसका अनुसरण करने वाले होंगे। अनुसरण कर्त्ताओं की जानकारी के साथ यह भी आवश्यक है कि उसमें क्या कमियाँ हैं उन कमियों को दूर किया जा सकता है या नहीं। इन सारी बातों का ध्यान रखते हुए ही नेतृत्व का विकास सम्भव है। स्थानीय नेतृत्व के चयन और विकास के लिए कुछ विधियों का प्रयोग किया जाता है। ये विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. विचार विमर्श विधि (Discussion Method) – आयोजित किये जाने वाले विचार विमर्श के समय यह ध्यान देना आवश्यक है कि कौन व्यक्ति व्यर्थ की बातें कर रहा है और कौन काम की बात कर रहा है। जिसके विचार स्पष्ट हों कार्यक्रम के योग्य हों उन्हें पहचाना जा सकता है। विचार विमर्श के समय व्यक्ति के कई गुणों की जानकारी की जा सकती है।

2. विचार गोष्ठी विधि (Workshop Method) – विचार गोष्ठी में कई छोटे–छोटे समूह बनाए जाते हैं। इन समूहों को विषय पर विचार विमर्श करने और उसे प्रस्तुत करने का कार्य किया जाता है। इसी समय कार्यकर्ता यह देख लेता है कि कौन व्यक्ति कितना गतिशील और कार्यक्रम के अनुकूल है। किए जाने वाले कार्य के सम्बन्ध में कितना सही नेता का चुनाव इस गोष्ठी में किया जा सकता है।

3. प्रेक्षण विधि (Observation Method) – विभिन्न कार्यक्रमों में सम्मिलित होकर कार्यकर्त्ता यह देख लेता है कि कौन सा व्यक्ति कार्य को सही ढंग से सम्पादित कर सकता है। इसमें थोड़ा समय लगता है पर सही नेतृत्व का चुनाव उससेसरलता से किया जाता है।

नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण (Training of Leadership)

समाज कार्य या सामाजिक क्रिया के लिए जिस प्रकार का नेता चाहिए, उसमें जो गुण और विशेषताएँ चाहिए उसका चुनाव करने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि जो कार्यक्रम का विषय होउसकी पूरी जानकारी दी जाय। उसके लिए नेता का प्रशिक्षण आवश्यक है। जिससे कि वह कार्यक्रम में सम्मिलित समूह या और समुदाय के लोगो को जागरूकता प्रदान कर सके। समुदाय की जागरूकता के अभाव में बड़े से बड़े कार्यक्रम असफल हो जाते हैं। नेतृत्व के विकास के लिए अभिप्रेरणा की आवश्यकता होती है। यह व्यक्ति विशेष की क्षमता पर आधारित है कि वह अपने को कितना अभिव्यक्त कर पाता है। जन्मजात नेतृत्व में तो ये गुण विद्यमान होते हैं फिर भी इसे कार्यक्रम के सम्बन्ध में प्रशिक्षण की

आवश्यकता होती है। चयनित नेताओं को ही प्रशिक्षण की आवश्यकता है है। प्रशिक्षणोपरान्त नेता में कार्य के प्रति रुचि अधिक बढ़ जाती है।

प्रशिक्षण के माध्यम से समाज की समस्याओं, सांस्कृतिक विभिन्नताओं आदि की पूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। समस्याएँ क्या हैं, उनमें प्राथमिकता किसे दिया जाय आदि के समन्ध में जानकारी प्रशिक्षण में प्राप्त हो सकता है। सामूहिक कार्यों में योग्यता और अनुभव की आवश्यकता होती है। इसे समझने की आवश्यकता होती है कि योग्यता ओर क्षमता का विकास किस प्रकार किया जाय। समूह या समुदाय की क्षमता का विकास करना ही समाज कार्य का लक्ष्य होता है इसके लिए सक्षम नेतृत्व की आवश्यकता होती है। यह सक्षम नेतृत्व प्रशिक्षण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है जिसमें वाद–विवाद, विचार–विमर्श, सामूहिक तथ्य आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।

स्थानीय नेतृत्व की भूमिका समुदाय के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पादित किए जाते हैं। व्यवसाय, शिक्षा, मनोरंजन, कृषि, पशुपालन आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिसमें अलग–अलग नेतृत्व की आवश्यकता होती है कोई कृषि कार्य अच्छा कर सकता है तो कोई अच्छा व्यवसायी होता है। इस प्रकार समुदाय में स्थानीय नेताओं का चयन, उनका प्रशिक्षण आदि उसी क्षेत्र में होता है जिस काम को वे करते हैं। संस्था क्या चाहती है उसके अनुरूप ही योग्य नेतृत्व की आवश्यकता है, जिसे प्रशिक्षण के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

स्थानीय नेता वही होना चाहिए जो समूह के कार्यों में रुचि ले और समूह को उत्तरोत्तर विकास की ओर ले जाय । कभी–कभी उनकी अपनी तकनीकी और विचार को ही संस्था अपने कार्यक्रम के अनुरूप पाकर अंगीकृत कर लेती है। नेतृत्व में उत्तरदायित्व का महत्वपूर्ण स्थान है। नेता का काम अपने समूह को आगे बढ़ाना है यदि इस कार्य को वह नहीं कर पाता है तो समूह का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाता। नेता के लिए समय ओर दूसरों के लिए कार्य करने की योग्यता होना आवश्यक है। नेता में पहल करने की क्षमता होना आवश्यक है। यदि वह परमुखापेक्षी बनकर दूसरे की प्रतीक्षा करता है और स्वयं पहल करने की क्षमता नहीं रखता है तो उस समूह को कभी भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है।

समूहों को दो प्रकार की आवश्यकता होती है –

1. लक्ष्य को दृष्टि में रखकर कार्य करने में सहायता

2. समूह को कार्य करने के लिए सही अवसर देने एवं वातावरण बनाने में सहायता करना इस आधार पर स्थानीय नेता को निम्नलिखित प्रकार से काम करने की आवश्यकता होती है–

(1) आवश्यकताओं का पता लगाना और उसके समाधान के लिए सहायता करना

(2) स्वयं कुछ करके दिखाने की योग्यता नेता के लिए आवश्यक है।

(3) समूह को हमेशा लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करना और उसके लिए प्रेरित करना।

(4) समुदाय में पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास कर सभी के सहयोग और सहभागिता से कार्य करने की क्षमता का विकास करना।

(5) यदि समूह एक रूप नहीं हो सकता और सबके अलग–अलग विचार और धारणाएँ हैं तो समूह का सम्यक विकास सम्भव नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि समूह के अन्तर्गत सभी व्यक्ति एक तरह से सोचे और उसी के अनुरूप कार्य करे।

(6) समूह के लिए उन समस्त साधनों को उपलब्ध कराना जिससे लक्ष्य प्राप्ति हो सके चाहे वे संशाधन आन्तरिक हो या वाह्य।

इकाई–4

सामुदायिक विकास
(Community Developmaint)

अभी हम लोगों ने सामुदायिक संगठन के सम्बन्ध में अध्ययन किया। सामुदायिक विकास समुदाय के आर्थिक पक्ष से सम्बन्धित है और सामुदायिक संगठन आर्थिक पक्ष को सुदृढ करने के लिए लोगों को संगठित करने, सहयोग और सहभागिता के लिए प्रेरित करने का कार्य करता है। हमारा भारत गांवों में बसता है। यहाँ की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि पर आधारित है। गुलामी के दिनों में हमारे देश में कृषि पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया बल्कि अंग्रेजों ने कृषकों की भूमि पर अफीम की खेती कराकर अपना कोष भरा। स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् भारतीय गांवो की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा गया। भारतीय गांवों की ओर ध्यान देना आवश्यक समझा गया भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का आरम्भ 1951 से हुआ और उसके ठीक बाद सामुदायिक विकास योजना का आरम्भ 2 अक्तुबर 1952 को हुआ।

विकास शब्द से सीधा सम्बन्ध आर्थिक विकास से है। भारतीय ग्रामीण समुदाय जो बहुत पिछड़ा हुआ था उसे आगे बढ़ाने और आत्म निर्भर बनाने के लिए आरम्भ में 55 विकास खण्डों में कार्य आरम्भ हुआ। यह एक अग्रगामी परियोजना (Pilot Project) के रूप में आरम्भ हुआ जिसमें ग्रामीण विकास के लिए कृषि, उद्योग, पशुपालन, सामाजिक शिक्षा आदि विषयों को रखा गया। भारत ने अल्वर्ड मायर (Albert Mayor) को इस परियोजना के लिए चुना जिन्होंने समुदाय के सारे मूल्यों को ध्यान में रखकर कार्यक्रमों का निर्धारण किया। समुदाय और विकास दोनों को ध्यान में रखकर इस कार्यक्रम का आरम्भ किया गया। इसके अलग से एक मंत्रालय बनाया एस.के.डे. इसके प्रथम मंत्री बनाए गया। उन्होंने इस कार्य को पारिभाषित करते हुए बतलाया, ''यह नियंमित रूप से समुदाय के कार्यों का प्रबंधन करने के लिए अच्छी प्रकार से सोची हुई एक योजना है।''

योजना आयोग ने इसे, ''जनता द्वारा स्वयं अपने ही प्रयासों से ग्रामीण जीवन में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने का प्रयास ही सामुदायिक विकास माना।''

परतंत्रता का सबसे अधिक दंश ग्रामीण लोगो ने झेला है। महात्मा गांधी ने ग्रामीण जीवन और ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में बहुत कुछ किया और कहा गांधी के सपनों का गांव वहाँ है जहाँ का समाज अहिंसक होगा ष्अहिंसक समाज में कोई किसी का शत्रु नहीं होगा। सभी अपना–अपना कार्य करेंगे। कोई निरक्षर नहीं रहेगा। उत्तरोत्तर सबके ज्ञान की वृद्धि होती रहेगी। सारी प्रजा में कम से कम बीमारियाँ होगी कोई दरिद्र नहीं होगा और परिश्रम करने वाले को हमेशा काम मिलता रहेगा। जुआ, मद्यपान व्यभिचार और वर्ग विग्रह को कोई स्थान नहीं होगा। धनी लोग अपने धन का विवकेपूर्ण उपयोग करेंगे और ऐशो आराम से उसे बरबाद नही करेगें। स्वराज्य में यह नहीं होना चाहिए कि मुट्ठी भर धनी लोग रत्नजड़ित मकानों में रहे और हजारों लाखों लोग हवा और प्रकाश रहित कोठरियों में पशुवत जीवन विताएँ ।ष महात्मा गांधी इस प्रकार सर्वांगीण ग्रामीण विकास के पक्षधर थे। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पडिंत जवाहार लाल ने भी इसी आशा से मील का पत्थर मानते हुए सामुदायिक विकास परियोजनाओं को भारत की जगमगाती जीवन व प्रोवेधिक

चिंगारिया कहा था जिनमें व्यक्ति में आशा व उत्साह की किरणें फूटती हैं। इनके मुख्य चार उद्देश्य निर्धारित किए गए–

(1) ग्रामीण लोगों और समुदायों में प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास।

(2) सहकारी और सहयोगात्मकढंग से काम करने की आदत डालना।

(3) उत्पादन में वृद्धि करना।

(4) रोजगार में वृद्धि करना।

1953 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के साथ ही राष्ट्रीय विस्तार सेवा योजना का आरम्भ हो गया जिसमें सामाजिक शिक्षा तथा कृषि विकास आदि की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना के जुड़ जाने से सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत सिंचाई विकास, कृषिगत संसाधनों का विस्तार, भूमि सुधार, वृक्षारोपण, सड़क निर्माण, शिक्षा प्रसार, स्वास्थ्य सुविधाओं में बढ़ोत्तरी, ग्रामीण उद्योगों का विकास, सस्ते आवासों का निर्माण तथासमाज कल्याण के कार्य आदि सम्मिलित हो गए। उत्पादन और समाज कल्याण दोनों कार्यक्रम एक साथ संचालित किए गए।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पद्धतियाँ (Method of Community Development)

(1) सामुदायिक विकास एक प्रक्रिया के रूप में (Community Development as a process) – किसी भी प्रकार के विकास के लिए प्राचीन मान्यताओं और प्रणालियों में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। परिवर्तन और अनुकूलन एक प्रक्रिया है जो निरन्तर चलता रहता है। सामुदायिक विकास भी एक प्रक्रिया है जिसमें प्राचीन मान्यताओं और प्रणालियों में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। कृषि स्वास्थ्य सिंचाई, आदि की प्राचीन व्यवस्था को छोड़कर नयी व्यवस्था को अपनाना सरल काम नहीं है। इस परिवर्तन के लिए यह आवश्यक था कि राष्ट्रीय विस्तार योजना के माध्यम से लोगों की गोष्ठियाँ आयोजित की जाय और उसमें नये कृषि यंत्रों खादों, स्वास्थ्य सेवाओं, उद्योगों आदि की चर्चा की जाय और लोगों में निर्णयन की क्षमता का विकास किया जाय। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आपूर्ति तंत्र (Delivery System) से अलग समुदाय के पारम्परिक स्रोतों को भी विकास के लिए महत्वपूर्ण स्थान दिया गया जिससे संसाधनों के लिए एक स्वयं का तंत्र विकसित हो सके। समाज में इस प्रकार के परिवर्तन के लिए मनोवैज्ञानिक कारक ही अधिक महत्वपूर्ण है जिस पर पहले ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार यह कार्यक्रम प्रक्रिया के रूप में निरंतर परिवर्तनशील रहा है। इसमें बहुत से आयाम बाद के वर्षों में जोड़े और घटाए जाते रहे हैं।

(2) विधि के रूप में (Community Development as a Methoed) – सामुदायिक विकास कार्यक्रम समुदाय के संगठन और विकास के लिए एक विधि का या पद्धति के रूप में कार्य करता है। मानव जीवन परिवर्तनशील है। परिवर्तन से ही विकास होता है। आखेट से कृषि, कृषि से उद्योग और पशुपालन और आज का समय बहुआयामी विकास सब कुछ परिवर्तन से ही प्राप्त हुआ है। इस परिवर्तन को लाने की विधियों काप्रयोग सामुदायिक

विकास में किया जाता है। यह जनसहयोग पर आधारित कार्यक्रम है इसीलिए इसमें अलग से सामुदायिक संगठन और प्रसार सेवाओं का उपयोग कर समाज में परिवर्तन लाया जाता है और उसके बाद विकास से सम्बन्धित कार्यों को किया जाता है।

(3) कार्यक्रम के रूप में (Community Development as a Programme) – सामुदायिक विकास के अन्तर्गत बहुत से कार्यक्रमों का समावेश किया गया। सिंचाई विकास, कृषि विकास समाज शिक्षा आदि अनेक कार्य इसके अन्तर्गत समाहित हैं। समुदाय के लोग इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वयं विचार विमर्श करते हैं और निर्णय लेते हैं। उन निर्णयों के आधार पर विकास कार्यों का संचालन किया जाता है।

(4) आन्दोलन के रूप में (Community Development as a Movement) – कार्यक्रम के आरम्भ से ही आन्दोलन कहा गया। किसी भी प्रकार के नवीन कार्यक्रम को लागू करने के लिए सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता होती है। सामुदायिक विकास को सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं और व्यवहारों में परिवर्तन करने के लिए एक आन्दोलन के रूप में देखा गया। एस. के.डे. और पंडित जवहार लाल नहेरू ने इसे आन्दोलन कहा। यह वास्तव में एक आन्दोलन है जिसमें प्राचीन व्यवस्थाओं को छोड़कर नयी व्यवस्थाओं के अनुरूप कार्य करना है। यह आन्दोलन इसलिए भी है क्योंकि इसमें व्यक्ति की नहीं अपितु समुदाय और समाज को महत्व दिया गया। गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी और अज्ञानता के विरुद्ध यह लोगों के हृदय परिवर्तन द्वारा कार्य करने को प्रेरित करता है इसलिए यह एक आन्दोलन है। इसकी अपनी संरचना है इसकी अपनी कार्यप्रणाली है और मानव व्यवहारों में परिवर्तन के माध्यम से कार्य करता है इसलिए यह एक आन्दोलन है।

सामुदायिक विकास का दर्शन (Philosophy of Community Development)

सामुदायिक विकास स्वयं में एक पूर्ण कार्यक्रम एवं आन्दोलन के रूप में आरम्भ हुआ। इसके पीछे–मुख्य तर्क यह था कि ग्रामीण समुदाय को संगठित कर उसका आर्थिक विकास किया जाय। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् महात्मा गांधी और अन्य नेताओं की अपेक्षाके अनुरूप ग्रामीण समुदाय का समन्वित विकास करना आवश्यक था। वह एक प्रजातांत्रिक राष्ट्र है। रूस और चीन की भांति तानाशाही तरीके से विकास करना और नियमों का पालन न करने वाले को दंड देने का प्राविधान हमारे जनतंत्र में सम्भव नही था। इसीलिए अमेरिका और इंगलैंड जैसे प्रजातांत्रिक देशों की नीतियों का अनुसरण कर समुदाय को संगठित करना मुख्य रूप से आवश्यक था और समुदाय के लोगों की राय से ही विकास का आयोजन करना था। इस प्रकार के विकास में निश्चित रूप से समय अधिक लगता है। लेकिन जनसहयोग आधार पर जो कार्य किया जाता है वह सतत चलता रहता है यह मुख्य दर्शन था सामुदायिक विकास कार्यक्रम के पीछे। विकास परियोजनाओं को लागू करते समय यह ध्यान रखा गया कि किसी भी रूप में किसी प्रकार का दबाव समुदाय महसूस न करे इसीलिए अग्रगामी योजनाओं को शुरू किया गया जिसमें यह प्राविधान रखा गया कि कहीं किसी प्रकार की असफलता होने पर उसमें सुधार किया जा सके।

इस कार्यक्रम के अपने सिद्धांत निर्धारित किए गए। योजना आयोग के दिशा निर्देशों के अनुसार यह ध्यान रखा गया कि ग्रामीण समुदाय का समन्वित विकास हो सके। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित विन्दुओं पर ध्यान दिया गया–

1. समुदाय की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्यक्रम का निर्धारण वहाँ के लोगों के परामर्श से करना।

2. समन्वित विकास के लिए एक बहुआयामी योजना के रूप में समुदाय द्वारा स्वयं की इच्छा और रुचि के अनुरूप कार्यक्रमों का निर्धारण करना।

3. समुदाय की प्राचीन मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए नवीन विचारों मूल्यों और मान्यताओं को अंगीकृत करने के लिए प्रेरित करना।

4. जन सहयोग के आधार पर योजना निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन का उत्तरदायित्व समुदाय के लोगों पर ही रखा गया।

5. समुदाय में स्थानीय नेतृत्व का विकास करना जो अपने समुदाय को नवीनताओं को स्वीकार करने के लिए प्रेरित कर सके और स्वयं अपने व्यवहार कार्य के माध्यम से समुदाय का विकास कर सके।

6. सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों में समुदाय के लोगों को आत्म निर्भर बनाने का था इसलिए लोगों को स्वावलम्बी और आत्म निर्भर बनाना सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया।

7. कार्यक्रम से हुए लाभ को समुदाय के सभी लोगों में वितरित करने का प्राविधान रखा गया है। किसी भी प्रकार की तकनीकी, यंत्र आदि के लिए सबको समान अवसर देने की बात की गयी।

8. सहकारिता सहभागिता को कार्यक्रम का मुख्य आधार माना गया जिससे कि लोगों में आत्म विश्वास उत्पन्न हो सके और कार्यक्रम के प्रति अपनत्व की भावना का विकास हो सके।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन (Evalvation of Community Devlopment Programme)

ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास का लाभ प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होना था किन्तु किसी न किसी कारण से केवल वे लोग लाभान्वित हो पाए जो पहले से ही विकसित थे। निश्चित रूप से इस कार्यक्रम के माध्यम से विकास हुआ किन्तु यह विकास कुछ व्यक्तियों और क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया है। कृषि क्षेत्र में इस योजना के माध्यम से लोगों में उन्नतिशील बीज, खाद, सिंचाई कृषियंत्र आदि का उपयोग बढ़ा और उससे उत्पादन में वृद्धि हुई। सब कुछ मिलाकर इस योजना से आर्थिक लाभ अवश्य हुआ। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विन्दुओं पर कार्य हुआ–

1. कुछ क्षेत्रों में नियोजित विकास हुआ।

2. कृषि उत्पादन में वृद्धि की नयी नीति के कारण उन्नत किस्म के बीज, खाद, सिंचाई, एवं कृषि यंत्रों का उपयोग बढा और इससे उपयोगकर्ताओं को लाभ हुआ।

3. बिजली, जल, सड़क, विद्यालय चिकित्सालय आदि संशाधनों का विकास हुआ और समुदाय के लोग इससे लाभान्वित हुए।

4. ग्रामीणों के लिए गांव में ही रोजगार सृजन के क्षेत्र में कुछ काम हुआ। रोजगार के अवसर बढ़े। कृषि, पशुपालन के क्षेत्र में लोगों को रोजगार मिला ओर परियोजनाओं के माध्यम से भी काम मिला।

5. वास्तविक उद्देश्य लोगों के विचारों धारणाओं और मान्यताओं में परिवर्तन के क्षेत्र में कुछ काम हुआ लोगों ने आधुनिक तकनीकी का उपयोग आरम्भ किया कम से कम लोगों में नयी प्रौद्योगिकी नए खाद, नए कृषि यंत्रों के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ी और उसका लाभ प्राप्त हुआ।

6. ग्रामीणों में स्वेच्छा से कार्यक्रमों में सहयोग की भावना का विकास हुआ। लोगों ने कार्यक्रमों में लेना आरम्भ किया और सामुदायिक विकास का महत्व समझा।

उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त अनेक ऐसी कमियाँ इस कार्यक्रम के संचालन में देखी गयी जिससे अपेक्षित लाभ की प्राप्ति नही हो सकी। इनमें मुख्य–

(1) भूमि सुधार के कार्यक्रमों के संचालित न होने के कारण कृषकों के एक वर्ग में निराशा उत्पन्न हुई। भूमिहीनों और गरीब लोगों को अपने जीवन–यापन के लिए या तो पलायन करना पड़ा या दूसरे पर आश्रित होना पड़ा।

(2) वित्तीय संशाधनों की कमी और कुप्रबंधन के कारण कृषि विकास के क्षेत्र में तकनीकी परिवर्तन बहुत कम हो पाया और आम लोगों को उससे कम लाभ प्राप्त हो सका।

(3) यद्यपि इस कार्यक्रम को आन्दोलन कहा गया लेकिन इसके लिए अपेक्षित जनसहयोग प्राप्त नहीं हो सका। कार्यकर्त्ताओं ने लक्ष्य की पूर्ति के लिए एन–केन प्रकारेण प्रयास किया जिससे कि जनसहभागिता पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और यह एक सरकारी कार्यक्रम बन कर रह गया।

(4) लक्ष्यपूर्ति की दिशा में कल्याणकारी कार्यक्रमों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। मात्र उत्पादन वृद्धि तथा आय व रोजगार बढ़ाने पर ही विशेष ध्यान दिया गया जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि कई कार्यक्रम पीछे छूट गए।

(5) सामुदायिक विकास कार्यक्रम को अग्रगामी परियोजना के रूप में आरम्भ किया गया लेकिन इसके लिए पूर्व में कर्मचारियों और अधिकारियों को सही प्रशिक्षण नहीं दिया गया जिसके कारण कर्मचारी और अधिकारियों में भटकाव बहुत दिखा। उन्होंने खाद तो बेचा लेकिन उससे क्या लाभ और हानि होगी लोगो को पता नहीं चल सका। जिससे कुछ लोगों ने ही विकास के संशाधनों का उपयोग किया जनसामान्य इससे अधिक लाभ नहीं प्राप्त कर सका।

(6) विभिन्न विकासखण्डों और क्षेत्रों की अलग–अलग आवश्यकताएँ थीं। कहीं कृषि उत्पादन अच्छा हो सकता था कहीं फल सब्जी अच्छी हो सकती थी। यह लोग ही जानते हैं कि उनके समुदाय की क्या आवश्यकता है। इस कार्यक्रम में योजना ऊपर से लादी गयी इस क्षेत्रीय आवश्यकताओं व संशाधनों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। फलतः इस कार्यक्रम से अपेक्षित लाभ नहीं हो सका।

(7) सामाजिक समस्याओं जातिवाद, पिछड़ापन, निरक्षरता, कुपोषण आदि पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ये सामाजिक समस्याएं पिछड़ेपन का मुख्य कारण है किन्तु आरम्भ में इस पर ध्यान नहीं दिया गया। हुआ यह कि कुछ जातियों का तो विकास अधिकांश जातियाँ पिछड़ेपन का शिकार बनी रही और उनमें कुपोषण, निरक्षरता आदि की हुआ लेकिन समस्याएं बनी रहीं।

21 कहना न होगा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने लक्ष्य ष्स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता से दूर सरकारी कार्यक्रम बन कर रह गया। विकास का कार्य तो हुआ लेकिन समुदाय पीछे छुटता चला गया और आज भी यह ठीक नहीं किया जा सका है। गांव के लोग सरकारी सेवाओं के लिए लक्ष्यपूर्ति के साधन मात्र बन कर रह गए।

सामुदायिक विकास और सामाजिक परिवर्तन (Comminity Development and Social Change)

समाज में परिवर्तन, विकास, उन्नति आदि शब्दों का प्रायः प्रयोग होता है। परिवर्तन एक प्रक्रिया है जो प्रकृति में हमेशा घटित होती रहती है। इस संदर्भ परिवर्तन, विकास और उन्नति अलग–अलग शब्द हैं किन्तु ये एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित है। परिवर्तन के बाद विकास होता है। विकास में उन्नति निहित है। यदि विकास सकारात्मक है तो उन्नति होगी। समुदाय में परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं। इनको भाप पाना, या देखना कठिन होता है। जब यह परिवर्तन कुछ फल देने लगते हैं या प्रभावशाली हो जाते हैं तभी समुदाय को यह बात समझ में आती है कि परिवर्तन हो रहा है। समाज में परिवर्तन के साथ विश्वासों, मूल्यों कार्य प्रणालियों और प्रसार के तरीकों में भी परिवर्तन होने लगता है। सामुदायिक विकास में परिवर्तन ही मुख्य आधार है। प्राचीन से नयी धारणाओं, मान्यताओं और विचारों में परिवर्तन लाकर ही विकास किया जा सकता है। परम्परागत रूप से भारतीय कृषक अपना कार्य सदियों से करता आ रहा है। वह एक जीवन पद्धति के रूप में कृषि कार्य करता है। किन्तु विकास के लिए नवीन कृषि प्रविधियों, बीज, खाद, औजार आदि की आवश्यकता होती है। इन नवीन प्रविधियों और तरीकों को स्वीकार करना भी परिवर्तन है। किसी इच्छित अवस्था को पाने के लिए हमें नए और पुराने के बीच की खाई को पाटने की आवश्यकता पड़ती है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम हमें दो विन्दुओं पर ध्यान देने के लिए बाध्य करता है–

(1) व्यक्तियों और समूहों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध। समुदाय व्यक्तियों और समूहों के अन्तर्सम्बन्धों पर आधारित होता है। इन अन्तर्सम्बन्धों के कारण ही पंचायत, सहकारीसंस्थाएँ और शौचालय आदि की व्यवस्था का जाल समुदाय में बनाया गया है. इस संस्थाओं पर परिवर्तन का प्रभाव शीघ्रता से नहीं होता इसमें मानवीय सम्बन्धों की जटिलताओं का प्रभाव रहता है।

(2) व्यक्तियों का वस्तुओं से सम्बन्ध इस सम्बन्ध में देखा यह जाता है कि रेडियो से आरम्भ होकर मोबाइल और इन्टरनेट की मान्यता व्यक्तियों में बढ़ी हैं। लोगों में इन आधुनिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण बढ़ा है किन्तु आज की शिक्षा व्यवस्था, स्वास्थ्य सुविधा, पंचायतों आदि में अपेक्षित सहयोग नहीं प्राप्त हो रहा है। इसमें तात्पर्य यही निकलता है कि व्यक्ति का व्यक्ति या व्यक्ति का समूहों के सम्बन्धों में वांछित परिवर्तन धीरे–धीरे होता है किन्तु व्यक्ति का सामानों से सम्बन्ध सरलता से बन जाता है। कृषि क्षेत्र में बीज, खाद, सिंचाई की सुविधाओं, ट्रैक्टर आदि हमारी संस्कृति में सम्मिलित हो चुका है लेकिन समूहों और समुदाय के बीच सम्बन्धों में उतनी प्रगति नहीं हुई है।

सामुदायिक विकास का कार्यक्रम और दर्शन इस बात पर ही निर्भर है कि व्यक्ति का व्यक्ति से व्यक्ति का समूह से और व्यक्तियों और समूहों का समुदाय से सम्बन्ध सुदृढ़ हो। इसी से संस्थाओं का विकास सम्भव है। आज पंचायतों, सहकारी संस्थाओं और अन्य सामाजिक संस्थाओं का जो हाल है उससे स्पष्ट हो जाता है कि जो परिवर्तन सामुदायिक विकास से अपेक्षित था वह नही हुआ और भौतिक संशाधनों तक ही सारा विकास रह गया। सामुदायिक विकास का कार्यक्रम मुख्य रूप से समाज कार्य के सिद्धांतों के अनुरूप है किन्तु जल्दी और हड़बड़ी में यह पूरा कार्यक्रम ही सरकारी हो गया और वही हुआ और हो रहा है जो अन्य सरकारी कार्यक्रमों का होता है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने लोगों में जागरूकता परिवर्तन की इच्छा और विकास के प्रति विश्वास की भावना का विकास किया। पंचायतीराज, सामुदायिक विकास योजना का ही एक स्वरूप है जिसमें लोगों, महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों में अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। कृषि क्षेत्र में नवीनता औजारों उर्वरकों, और बीजों के प्रति उत्साह ही नहीं बढ़ा है बल्कि यह एक आवश्यक आवश्यकता हो गयी है। यहाँ तक कि आज खाद के लिए मारामारी की नौबत आ चुकी है। यहपरिवर्तन सामुदायिक विकास कार्यक्रम द्वारा ही लाया गया। इस कार्यक्रम के माध्यम से लोगों में इच्छा जागृत कर दी गयी। परिवर्तन की यह एक धारा है जिसमें लोग एक दूसरे का अनुकरण कर नवीनताओं को अपनाते हैं। रेडियो टी.वी. मोबाइल आदि भी देखा देखी ही उपयोग में लाए जा रहे हैं। स्वच्छता, शौचालय, रोगों का इलाज, शिक्षा आदि के प्रति लोगों में जागरूकता भी सामुदायिक विकास के माध्यम से उत्पन्न हुआ और आज इस पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है।

प्राचीन मान्यताओं, धारणाओं, मूल्यों और रीति–रिवाजों में भी परिवर्तन हुआ। भारतीय समाज जिसे बन्द समाज के रूप में मान्यता थी अब वह मुखर और नवीनताओं से परिपूर्ण हो चुका है। सामुदायिक विकास ने इन परिवर्तनों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया गया है।

परिवर्तन के लिए कुछ मुख्य तत्व होते हैं जिनका पालन सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सिद्धांतों में भी करना आवश्यक था। मुख्य रूप से–

1. आवश्यकता की पहचान

2. उद्देश्य निर्धारण

3. प्राथमिकता का निर्धारण

4. गतिशीलता लाना

5. कौशल का प्रशिक्षण देना

6. रुचि का विकास करना

7. कार्यक्रम में विश्वास उत्पन्न करना

8. संशाधनों का नियमित अवलोकन एवं अनुगमन

सामुदायिक विकास में सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए मुख्य रूप से कार्यकर्ताओं को जिम्मेदार बनाया गया जिनसे यह अपेक्षा की गयी की वे लोगों में रह कर लोगों की समस्याओं का समाधान करेरा कार्यकर्त्ताओं में कुछ आवश्यक गुणों की भी आवश्यकताहोती है। जिसके लिए कार्यक्रम में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया। वे गुण हैं–

1. ग्रामीणों के साथ मित्रवत किन्तु व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करना

2. सफल और सुयोग्य नेतृत्य का विकास करना

3. स्थानीय प्रतिनिधियों का चुनाव कर उन्हें दक्ष बनाना एवं प्रगति के लिए प्रोत्साहित करना।

4. उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना

5. शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए नयी संस्थाओं का विकास करना।

सामुदायिक संगठन का इतिहास सामुदायिक संगठन का आरम्भ अंग्रेजों के दान संगठनों द्वारा समितियों के गठन से आरंभ होता है। दानदाताओं ओर परोपकारी संस्थाओं के कार्यों का समन्वय करने की आवश्यकता महसूस की गयी किन्तु उसका आरम्भ 1943 में षनिर्धन सुधार संघश की स्थापना के साथ हुआ। संघ ने पूरे शहर को जिलों में विभक्त किया और प्रत्येक जिले में एक निरीक्षक नियुक्त किया। यह निरीक्षक ही तय करता था कि किस क्षेत्र में आवास, स्वास्थ्य तथा जीवन स्तर में सुधार की आवश्यकता है। 1877 में बफैलो में दान समितियों का जन्म हुआ जिसका मुख्य काम दाता समितियों में समन्वय स्थापित करना था। इसी समिति द्वारा कार्यक्रम की व्यापकता का कार्य सम्पन्न होता था। इन समितियों के माध्यम से लाभर्थियों की देखभाल वैमनस्य के स्थान पर सहयोग को प्रोत्साहन दिया गया।

1908 में पिट्सवर्ग में दान दाताओं का एक संगठन बना जिसका नाम श्सामाजिक एजेंसी परिषद श रखा गया। 1950 तक 450 सामुदायिक कल्याण परिषद बन चुके थे। समाज कल्याण कार्यों में समन्वय तथा सार्वजनिक एवं स्वैच्छिक एजेंसियों के बीच अन्तर्एजेंसी सहयोग, सेवा स्तरों का उन्नयन, स्वास्थ्य कल्याण कार्यों में सामुदायिक नेतृत्व धार्मिक समूहों एवं परोपकारी समूहों की स्वयं प्रेरणा से हुआ।

उस समय एजेसियों की संख्या बहुत अधिक हो गयी जिसके कारण दानदाताओं में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। ष्कई कपटी संकोचहीन उद्यमकर्त्ताओं ने दान संस्थाओं से भेंट मांगा बाद में उदार लोगों के साथ विश्वासघात हुआ। कुछ दानदाता संस्था के कर्मचारियों ने आवश्यकता से अधिक धनराशि दान में प्राप्त किया और उसका दुरुपयोग किया। समुदाय के अधिक महत्वपूर्ण एजेंशियों के पास कुशल धन संचय सुविधाओं का अभाव था।

दानदाता संस्थाओं के कार्यों का समन्वय करने के लिए लिवरपूल में ए. ह्यूम तथा अन्य दान समितियों द्वारा ष्दान कार्य समर्थन समिति का गठन किया गया। 1913 में ल्कीवलैंड में एन. डी. बेकर की स्वतः प्रेरणा से समुदाय चेस्टश की स्थापना की गयी जिसने 53 अभियान चलाए, संग्रहों का एक संगठन बनाया जिससे दान दाताओं की संख्या में वृद्धि हुई।

सामुदायिक कोष (Community Chest) – स्वैच्छिक एजेंसियों के लिए कार्य करने वाली सेवाओं तथा कर्मचारियों को धन की आवश्यकता की अनूभूति होने लगी थी। इसके लिए ऐच्छिक दाताओं पर निर्भर रहना पड़ता था। दाताओं को उसके प्रति कभी–कभी असंतोष एवं विरोध होता था। इस असंतोष और विरोध को दूर करने के लिए एवं कल्याण संगठनों द्वारा निष्पक्ष सहयोग के लिए एक सामुदायिक कोष की स्थापना की गई। नियंत्रण किसी संचालक मण्डल द्वारा होता था। इस संचालन मण्डल में दाता संस्थाओं एवं व्यक्तियों के अतिरिक्त शहर के कुछ प्रतिष्ठित लोगों को भी सम्मिलित किया जाता था। इस संचालक मण्डल के गठन में दाता संस्थाओं के अध्यक्ष, कार्यकर्त्ता, वाणिज्य मण्डल, उद्योगों, सेवा क्लबों और चर्चों के प्रतिनिधि सम्मिलित किए जाते हैं। इन सभी लोगों के प्रतिनिधित्व से एक संचालक मण्डल का चुनाव होता है जो कोष के कार्यों का अवलोकन करता एवं इससे सम्बन्धित नीतियों का निर्धारण करता है। कोष का सबसे महत्वपूर्ण कार्य आय–व्यय समिति अभियान समिति के पास होता है। कोष से धन लेकर ही दाता समितियाँ अपना अभियान आदि कार्यों का संचालन करती है तथा कर्मचारियों का वेतन आदि देती है।

कोष के संचालक मण्डल के अतिरिक्त एक आन्दोलन समिति भी होती है जो अभियान चलाकर दाताओं से धन की प्राप्ति करती है, आर्थिक दृष्टि से सामुदायिक कोष नागरिकों के स्वास्थ्य एवं सामाजिक आवश्यकताओं के लिए अध्ययन करता है।

सामुदायिक कोष स्वैच्छिक संस्थाओं की आर्थिक सहायता के लिए धन संग्रह करता है वहीं सामुदायिक कल्याण परिवार सामाजिक सर्वेक्षण, अध्ययन, स्वास्थ्य कल्याण ओर मनोरंजन सेवाओं के समन्वय और कार्यक्रमों का नियोजन करता है।

सामुदायिक कोष संयुक्त रूप से धन संचय का कार्य करता है और वार्षिक अभियान चलाता है। भारत में इस तरह की कई संस्थाएँ हैं जो लोगों, सरकारों और संस्थाओं से धन संग्रह कर शिक्षा, स्वास्थ्य, कल्याणकारी कार्यों में व्यय करती है। क्राय (ब्ल्), हेल्पेज इंडिया (Helpage India) आदि अनेक संस्थाएँ इस कार्य को करती हैं।

विदेशों में केयर (CARE), सी आर.एस. (CRS). आक्स फैम (OX FAM) सी.सी. एफ (CCF) आदि संस्थाएँ पिछड़े मुल्कों में गरीबों के कल्याण के लिए स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, आदि कार्यक्रमों का संचालन करती है, जिससे लाखों लोग और संस्थाएँ लाभान्वित होती हैं।

सामुदायिक कोष को अर्थ (Meaning of Community chest)

''कल्याण कार्यों के लिए स्थापित धन एकत्रित करने के इच्छुक नागरिकों एवं समुदाय के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाले स्वयं सेवियों का संगठन है।'' डी. पाल चौधरी की उक्त परिभाषा से सामुदायिक कोष के लिए निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है–

(1) प्रत्येक दान संगठन नियमानुकूल पंजीकृत होना चाहिए।

(2) धन इकट्ठा करना एवं वितरण कानूनों के अनुसार निर्धारित होना चाहिए।

(3) विधियों द्वारा निर्धारित प्रबंध समिति होनी चाहिए।

(4) संस्था के सदस्यों पर निर्धारित धन व्यय पर नियंत्रण होना चाहिए।

सदस्यता की शर्तें

1. उपयुक्त अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत संस्था जिसका उद्देश्य धन संग्रह करना है।

2. समुदाय विशेष के कल्याण के लिए विशेष जाति, वर्ग एवं भू–भाग के कल्याणार्थ कार्यक्रम की योजना होनी चाहिए।

3. सभी सदस्यों को दान कोष के लिए निर्धारित उद्देश्यों के विषय में जानकारी होनी चाहिए।

4. एकत्रित धन की पूर्ण सूचना, सम्पूर्ण आय व्यय का लेखा रखना और उसका लेखा परीक्षक से आडिट कराना आवश्यक है।

5. संस्था के सदस्यों द्वारा अन्य संस्थाओं के साथ समन्वय स्थापित करना आवश्यक है जिससे कि संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

6. संस्था द्वारा जरुरतमंद लोगों की आवश्यकतानुसार सहायता करना।

7. जरुरतमंद व्यक्तियों की समस्याओं की पहचान के लिए अध्ययन कराना चाहिए और आवंश्कताओं की प्राथमिकता निर्धारित की जानी चाहिए।

8. सदस्यों को संस्था की सदस्यता बढ़ाने के लिए विभिन्न सामाजिक आर्थिक वर्ग के लोगों से सम्पर्क करना चाहिए।

सामुदायिक कोष से प्राप्त सुविधाएँ

1. सामुदायिक कोष द्वारा अभियान चलाकर धन इकट्ठा किया जाता है। जिससे कि बार बार दान लेने की आवश्यकता न पड़े।

2. धन के सदुपयोग के लिए विभिन्न संस्थाओं के कार्यों की जानकारी प्राप्त कर ली जाती है जिससे कि धन का दुरुपयोग न हो।

3. कोष के कार्यकर्त्ताओं को धन संग्रह के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे कि वे साधारण व्यक्तियों की तुलना में अधिक धन एकत्रित कर सकें।

4. जनकल्याण में लगी सभी संस्थाओं को दान संग्रह की आवश्यकता नही होती है। जिसके कारण उनका श्रम और समय बचता है।

5. सामुदायिक कोष में जनसम्पर्क के लिए विशेष व्यवस्था की जाती है जिससे दान कि दान देने वालों को सही जानकारी एक ही स्थान से प्राप्त हो सके।

6. संस्थाओं को नियमित सहायता की व्यवस्था होने से अधिक व्यावहारिक कल्याणकारी योजनाएँ बनाने का अवसर प्राप्त होता है।

7. सामुदायिक कोष से प्राप्त धन का लेखा–जोखा संस्थाएँ रखती हैं इसलिए सहायता में पारदर्शिता रहती है।

8. विभिन्न कल्याणकारी संस्थाओं, विभिन्न कार्यवाही समितियों एवं जन समुदाय से समन्वय स्थापित कर कल्याणकारी सेवाओं को अधिक व्यवस्थित एवं कारगर बनाया जाता है।

9. कोष के पास क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं का कोटा उपलब्ध रहता है। जिससे यह पता चल जाता है कि दान लेने वाली संस्थाओं में वृद्धि न हो और कल्याणकारी संस्थाओं को बढ़ावा दिया जाता है।

इकाई–5

नगरीय सामुदायिक विकास की विशेषताएँ (Objectives of Urban Comunity Devlopment)

1. पड़ोस में सामाजिक समभाव विकसित करना तथा राष्ट्रीय एकता की प्रगति करना ।

2. नगरीय समुदाय में सहभागिता की वृद्धि कर लोगों में समुदाय के प्रति सम्मान उत्पन्न करना तथा अपने पहल, संगठन, स्वयं सेवा और पारस्परिक सहायता द्वारा समुदाय के सम्बन्ध में विचार करना।

3. लोगों में नागरिक चेतना के द्वारा धारणाओं में परिवर्तन लाने के लिए तथा अपनी स्थिति को सुधारने के लिए प्रेरित करना।

4. स्थानीय पहल और स्थानीय नेतृत्व का विकास करना।

5. नगर पालिकाओं और अन्य संस्थाओं से क्या सहायता चाहिए की जानकारी प्राप्त करना तथा सरकार तथा अधिकारियों से क्या सहायता प्राप्त किया जा सकता है की जानकारी करना।

सामान्य भाषा में नगरीय सामुदायिक विकास का उद्देश्य सामुदायिक जीवन तथा सामुदायिक जीवन प्रणाली का विकास करना है तथा लोगो की सहभागिता से आत्मनिर्भरता और नागरिकता का विकास करना होता है।

सामुदायिक विकास के मुख्य तत्व

1. लोगों की सहभागिता

2. स्थानीय पहल तथा

3. पहल, स्वावलम्बन और पारस्परिक सहायता के लिए तकनीकी सहायता करना।

नगरीय सामुदायिक विकास के कार्य

नगरीय सामुदायिक विकास को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. आत्म निर्भरता का विकास।

2. समुदाय में उसकी क्षमताओं के सम्बन्ध में जागरूकता लाना तथा युवा, गतिशील और प्रजातांत्रिक नेतृत्व का विकास करना।

3. लोगों में यह अनुभूति उत्पन्न करना कि वे ही अपने प्रयासों से राष का भविष्य सुरक्षित कर सकते हैं।

4. सामुदायिक कार्य में आत्मानुभूति के द्वारा लोगों में सहभागिता, गर्व एवं संतोष का ज्ञान कराना।

2. शैक्षणिक कार्य

1. लोगों में ऊंचे जीवन स्तर को प्राप्त करने की इच्छा और विचार उत्पन्न करना।

2. लोगों को नयी प्रौद्योगिकी की जानकारी प्रदान करना।

3. परिवर्तित सामाजिक मूल्यों के अनुसार उनके व्यवहार में परिवर्तन लाना।

4. स्वस्थ पड़ोसी की भावना और विचारों को प्रोत्साहन देना।

5. नगरिकों को सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों की जानकारी देना।

3. आर्थिक कार्य

1. कौशल प्रशिक्षण के द्वारा रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।

2. परिवार की आय को बेहतर बनाने के लिए खाली समय के उपयोग के सम्बन्ध में कार्य करना लोगों को रोजगार सुरक्षित कराना।

3. ऋण और सहकारी समिति के माध्यम से कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करना।

4. बचत की आदत डालना।

4. नागरिक सुविधाएँ

1. बेहतर जीवन स्तर को प्रोत्साहन एवं सभ्य व्यवहार के तरीकों का प्रसार करना।

2. मूल भौतिक आवश्कताओं की पूर्ति तथा स्लम तथा अन्य पिछड़े क्षेत्रों का विकास करना।

3. अच्छे नागरिक के निर्माण के लिए नागरिक चेतना का विकास करना।

नगरीय सामुदायिक विकास में समाज कार्य की भूमिका

(1) चेतना जागृति – नगरीय सामुदायिक विकास के समुदाय में चेतना जागृति कामहत्व पाउले फियरे (Paule Fiere) के किसानों को पढ़ने के लिए शिक्षा देने और उसके साथ ही उन्हें राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों को शिक्षा देने से सम्बन्धित है। इससे लोगों में समानता और पारस्परिक सौहार्द की भावना का विकास होता है। फियरे का साक्षरता सिद्धांत जागरूकता और वाद–विवाद पर आधारित है। इस प्रकार चेतना जागृति लोगों में स्वयं संगठित होने एवं स्वयं कार्य करने की क्षमता का विकास करना है। फियरे का यह विश्वास था कि जब कोई व्यक्ति किसी चुनौती को स्वीकार कर लेता है तथा उसके आधार पर कार्य करने लगता है। तभी उसकी जानकारी की पहचान होती है।

(2) समुदाय को संगठित करना (Organization Community) – समुदाय को संगठित करना एक लम्बी प्रक्रिया है इसमें समस्या और मुद्दों से प्रभावित होने वाले लोगों को समाधान के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता होती है। समुदाय के संगठन में विभिन्न लोगों के शब्दों को एक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है तथा अनुभूत आवश्यकताओं के आधार पर समुदाय को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है। सामुदायिक संगठन सामूहिक समाधान पर ध्यान देता जिसमें काफी लोग सम्मिलित होते हैं। इसी कुछ लोगों की सहभागिता के बाद अधिकांश लोग सम्मिलित होते जाते हैं। प्रभावशाली सामुदायिक संगठन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है–

1. समुदाय को समझना

2. एक कार्य योजना का निर्माण

3. काम करने के लिए गतिशील बनाना

4. क्रियान्वयन

5. मूल्यांकन

(3) समुदायिक गतिशीलता –समुदाय के सभी लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित करना एवं उन्हें वर्तमान स्वास्थ्य सम्बन्धी सामाजिक और पर्यावरण से सम्बंधित समस्याओं के समाधान के लिए आगे बढ़ाना। इसमें निम्नलिखित प्रक्रियाओं पर ध्यान दिया जाता है–

1. समुदाय का कार्यक्रम पूर्व मूल्यांकन करना

2 सही व्यक्तियों को जोड़ना

3. मजबूत नेता का चुनाव करना

4. रणनीति और लक्ष्य निर्धारित करना

5. प्रगति का नियमित मूल्यांकन करने का मार्ग निकालना।

(4) संघर्ष का शमन – संघर्ष का अर्थ होता है विपरीत या दो या दो व्यक्तियों, समूहों, क्षेत्रों या राष्ट्रों के बीच कटुता । जब हम संघर्ष की बात करते हैं तो हमें झगड़े, युद्ध या पारस्परिक नासमझी, सम्बन्धों में रुकावट प्रतिस्पर्धा, घृणा तथा अन्य बुराइयों का आभास होता है। साधारणतया संघर्ष को बरबादी का कारण नही माना जाना चाहिए। क्योंकि समाज कार्य में ष्संघर्ष समझौते का आधार माना गया है। मुख्यतः संघर्ष निम्नलिखित स्थितियों के परिणामस्वरूप होता है–

1. अनुभूतियों में विभिन्नता

2. व्यवहारों या धारणाओं में विभिन्नता

3. राष्ट्रीय संशाधनों का असमान वितरण

4. मूल आवश्यकताओं का अभाव या निराशा

5. विभिन्न रुचियाँ

6. सैद्धांतिक मदभेद (धर्म, राजनैतिक दलों के आधार पर)

संघर्षों का स्तर

1. पारस्परिक संघर्ष –किसी मुद्दे पर दो या अधिक व्यक्तियों के बीच संघर्ष।

2. समूह में आन्तरिक संघर्ष –एक ही समूह के सदस्यों में संघर्ष।

3. अन्तर्समूह संघर्ष – संगठनों, परिवारों और संस्थाओं के बीच संघर्ष।

4. अन्तर्राजीय संघर्ष – देश के अन्तर्गत विभिन्न समूहों में संघर्ष।

5. अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष – दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच संघर्ष।

इन संघर्षों के शमन के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होता है–

1. उपेक्षा –जो लोग संघर्ष को नकारात्मक समझते हैं, या इसके प्रति उदासीन रहते रू हैं वे संघर्ष की उपेक्षा करते हैं लेकिन समाज कार्यकर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वह इन संघर्षों का शमन करे। समाज कार्य में इसके लिए अनेक पद्धतियों का अनुसरण करने की बात की गयी है।

2. समझौता – अन्तिम निर्णय पर पहुंचने के पूर्व पारस्परिक विचार विमर्श और वादविवाद एक प्रणाली है इसमें क्रियात्मक सुनने और सहकारिता की भावना का विकास करना आवश्यक है।

3. प्रतिस्पर्धा – जब एक समूह या व्यक्ति अपने को दूसरे से अधिक बलशाली समझकर उसे दबाने लगे या उस पर नियंत्रण करना चाहे ऐसे में प्रतिस्पर्धा के सिद्धांत का पालन आवश्यक हो जाता है।

5. वकालत

उसका तात्पर्य होता है किसी के पक्ष में कुछ कहना। विभिन्न सामाजिक मुद्दों के समाधान के लिए प्रजातांत्रिक संस्थाओं को समझाना या उन पर दबाव बनाना।

1. समाज में दलितों के मुद्दों के सम्बन्ध में नीति निर्माताओं का ध्यान आकर्षित कराना।

2. नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन को प्रभावित करना।

3. समाज कल्याण से सम्बन्धित विभिन्न नीतियों, कार्यक्रयों और स्कीमों को सामान्य जन के समक्ष रखना और समझाना।

4. नीतियों के उचित क्रियान्वयन के लिए कौशल और विचारधारा का विकास करना।

5. जनाधारित सरकारी प्रणाली का निर्माण करना।

6. सिविल सोसाइटी के माध्यम से सामाजिक वकीलों को बढ़ाना।

6. क्षमता निर्माण

सामुदायिक क्षमता से तात्पर्य है कार्यक्रमों में सहभागिता के लिए व्यक्तियों समूहों और संगठन की क्षमता। समाज कार्य में लोगों की क्षमता विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिससे कि समुदाय एक सक्षम इकाई के रूप अपने क्रिया कलाप को संचालित कर सके। इसके लिए आवश्यक है–

1. सागाजिक पूंजी के निर्माण कार्यक्रम।

2. सेवाओं की आपूर्ति।

3. शासन में सहयोग।

सामुदायिक क्षमता का निर्माण की परिभाषा रू अपने स्वयं के समुदायों के कार्यक्रमों, संशाधनों को सुदृढ़ बनाने के लिए लोगों में कौशल और योग्यता का विकास करना इसमें मुख्य रूप से तीन कार्य होते हैं–

1. कौशल विकास।

2. ढाँचे का विकास।

3. सहयोग का विकास।

क्षमता निर्माण समुदायों में निम्नलिखित क्षेत्रों में पहुंच बनाता है–

1. कौशल

2. सूचना

3. प्राकृतिक, वित्तीय और आध्यात्मिक संशाधनों का विकास

4. ज्ञान

5. प्रौद्योगिकी

6. सम्पर्क

इस प्रकार सामाजिक कार्यकर्त्ता की नगरीय समुदाय में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत में पंचायती राज (Panchayati Raj in India)

भारत में लोकतांत्रात्मक व्यवस्था बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। गुलाम होने के पूर्व अकबर के शासन काल तक भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रमाण इतिहास में

मिलते हैं। छोटे–छोटे गणराज्यों में विभक्त यह देश सोने की चिड़िया कहा जाता था। ब्रिटिश शासन काल में भी मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में चन्देल राजाओं ने गणराज्य की व्यवस्था बनाए रखा और विकास के लिए ऐसे कार्य कराए जो ऐतिहासिक महत्व के हैं। यहाँ खेतों में बांधों का निर्माण, तालाब आदि राज्यों की मदद से कराए गए। आज भी लोकशाही और विकास कार्यों के प्रमाण यहाँ के गांवों में दिखलाई पड़ते हैं। पंच परमेश्वर की अवधारणा भारतीय समाज में बहुत पहले से रही है। यद्यपि इनका चुनाव नही होता था. किन्तु गांवों की व्यवस्था को सुधारने के लिए अपराधी को दंड देने के लिए और विकास के कार्यों के लिए गांवों में पंचायतों की व्यवस्था थी। कालान्तर में अंग्रेजी शासन काल में मुखिया शासन का दलाल हो गया और लोगों का उत्पीड़न करने लगा जिससे पंचायत व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गयी।

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय इस देश को पंच परमेश्वर की अवधारणा के अनुरूप चलाने की बात सभी नेताओं ने स्वीकार किया। महात्मा गांधी की ग्राम स्वराज की अवधारणा गांव में पंचायतों को और व्यक्तियों को पारस्परिक सहयोग पर आधारित समाज के गठन की ओर ले जाने की बात है। उन्होंने स्वयं लिखा है, ष्स्वतंत्रता नीचे से आरम्भ होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक गांव एक गणराज्य या पंचायत का राज्य होगा इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक को आत्म निर्भर होना होगा अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी कर लेना होगा ताकि वह अपना सारा प्रबंधन कर सके। यहाँ तक कि सम्पूर्ण संसार के विरुद्ध अपनी रक्षा स्वयं कर सके।ष महात्मा गांधी के विचार एक तरह से पंचायतों की स्वतंत्रत इकाई के रूप में विकसित करने का जो पूर्ण रूप से आत्म निर्भर होगा और किसी भी प्रकार की सहायता किसी से नहीं लेगा। आज पंचायत सरकारी नियंत्रण में है। सरकारीसहायता से चलती है। इसलिए सरकारी अहलकारों की गुलाम हो चुकी है। महात्मा गांधी ऐसी पंचायत व्यवस्था नहीं चाहते थे। वह पंचायत को एक आत्म निर्भर, स्वभासी और प्रजातांत्रिक व्यवस्था देने की बात करते थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान के निर्माण में भीमराव अम्बेडकर ने पंचायतों को सम्मिलित नहीं किया। उनका तर्क था कि प्रान्त और केन्द्र तक ही शासन व्यवस्था होनी चाहिए। गांवों में पंचायतें कुछ सबल लोगों के हाथों में चली जाएगी उससे पूरे गांव का नही बल्कि कुछ लोगों का ही विकास होगा। इसके विपरीत जय प्रकाश नारायण और अन्य कई नेताओ ने अम्बेडकर के इस विचार के विरुद्ध तर्क रखे और पंचायतों का महत्वपूर्ण स्थान देने के लिए संविधान में प्राविधान कराया। आरम्भ में ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत और कई गांवों को मिलाकर एक न्याय पंचायत की व्यवस्था की गयी।

महात्मा गांधी शासन में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका चाहते थे। उनका तर्क था कि गांवों में यदि पंचायते नहीं होगी तो शासन में गांवो का प्रतिनिधित्व नही हो पाएगा। उनका विचार था कि लोकतंत्र को लाखों गांवों तक पहुंचाए बिना वास्तविक प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली का कोई महत्व नही है। भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में यह प्राविधान जोड़ा गया कि प्रत्येक राज्य अपने यहाँ पंचायतों का कानून बनाएंगे और पंचायतों को महत्वपूर्ण स्थान देगें। 1957 तक पूरे भारत में पंचायतों के कानून बन चुक थे और नियमानुकूल व्यवस्था की गयी।

बलवन्तराय मेहता कमेटी की रिपोर्ट रू संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप लगभग सभी राज्यों ने पंचायत राज कानून बना लिया था। उत्तर प्रदेश में यह कानून सर्वप्रथम लागू हुआ। पंचायतों के गठन के समय ही यह विचार आया कि केवल पंचायतों के गठन से उद्देश्य पूरे नहीं होते। महात्मा गांधी और जय प्रकाश नारायण के सपनों का भारत केवल कानूनों से सम्भव नहीं था। इसके लिए सुदृढ़ व्यवस्था की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता को दृ ष्टि में रखते हुए 1957 में बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया जिसे पंचायतों के सम्बन्ध में विशद रिपोर्ट देने को कहा गया।

बलवन्त राय मेहता ने व्यापक अध्ययन एवं विचार विमर्श के बाद अपनी रिपोर्ट दिया जिसे 1959 में सरकार ने स्वीकृति प्रदान कर दिया। इस रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीणों को अपने गांव की योजना निर्माण का पूरा अधिकार प्राप्त हुआ। मेहता को यह विश्वास था कि जब तक ग्रामीण अपने गांव की समस्याओं के समाधान और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए योजना नहीं बनाता तब तक उसके ऊपर केन्द्रीय योजनाओं का भार बना रहेगा। हर गांव की अपनी समस्या होती है। अपने संशाधन होते हैं, अपनी आवश्यकताएँ होती हैं। यदि उनके आधार पर योजनाओं का निर्माण हो तो उसके क्रियान्वयन में कठिनाई नहीं होती है। केन्द्रीय योजनाएँ पहाड़ और मैदान के लिए एक होती है जिससे क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुसार योजनाएँ नहीं बन पाती इसीलिए इस कमेटी ने ग्राम पंचायतों में योजना निर्माण पर विशेष बल दिया। स्वरूप यह है कि गांव पंचायत अपनी योजना बनाए, क्षेत्र पंचायत सभी ग्राम पंचायतों की योजनाओं को संकलन कर क्षेत्रीय योजना बनाए और जिला परिषद पूरे जनपद की योजना बनाकर राज्य सरकार को प्रस्तुत करे।

इस तरह बलवन्त राय मेहता कमेटी ने एक त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था लागू करने की बात की जिसे केन्द्र सरकार ने पूर्णरूप से स्वीकार कर लिए। रिपोर्ट के बाद सभी कुछ राज्यों ने पंचायती राज व्यवस्था के सम्बन्ध में कानूनों का निर्माण किया। इस कमेटी के अनुसार त्रिस्तरीय व्यवस्था किया–

1. गांव के स्तर पर (ग्राम पंचायत)

2. विकासखण्ड के स्तर पर (क्षेत्र पंचायत)

3. जिला पंचायत (जिला स्तर पर

समिति ने पंचायतों की पुरानी व्यवस्था के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में बतलाया–

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में अपेक्षित जन सहयोग और सहभागिता का अभाव था।

2. जिला शिक्षा बोर्ड तथा सलाहकार समिति भी निष्प्रभावी हो गए थे।

3. जिला बोर्डो का कार्य भी सन्तोषजनक नहीं था और वह एक प्रभावहीन संस्था के रूप में कार्यरत थी।

समिति की रिपोर्ट के अनुसार प्रजातंत्रात्मक शासन में जिस प्रकार सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए था वह नही हुआ। प्राचीन संस्थाओं में कोई भी सहयोगात्मक दृष्टिकोण नही

था। हर स्तर पर मनमानी की अवस्था थी। समिति ने अपने अध्ययन के अनुसार यह सिफारिश किया कि–

(1) जिला बोडों के स्थान पर जिला परिषदों का गठन किया जाय तथा खण्ड सलाहकार समितियां के स्थान पर पंचायत समितियों का गठन हो।

(2) आय औरशक्ति दोनों का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय।

(3) ग्राम पंचायत तथा उच्च स्तर के प्रशासन तंत्र में समन्वय की स्थापना कर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की नीति अपनायी जाय।

पंचायती राज के प्रमुख उद्देश्य – समिति ने अपने अध्ययन में यह पाया कि पंचायतों के साथ ही सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों में भी जनसहयोग के अभाव में अपेक्षित लाभ नहीं हो रहा है। इसीलिए उन्होंने सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सारे कार्यों को पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत लाने की बात की। इस प्रकार पंचायती राज के उद्देश्य बहुमुखी विकास और विकेन्द्रीकरण सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया जिसमें सभी तत्वों का समन्वय आवश्यक माना गया। इस प्रकार पंचायतीराज का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित रूप में निर्धारित किया गया–

1. कृषि उत्पादन में वृद्धि कर ग्रामीणों को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता प्रदान करना।

2. सहकारिता का विकास करना तथा विभिन्न प्रकार की सामूहिक आवश्यकताओं की। पूर्ति के लिए सहकारिता को एक जीवन शैली के रूप में विकसित करना जिससे कि हर व्यक्ति इस संस्था से जुड़े।

3. ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता पारस्परिक सहयोग और बाहरी कार्यक्रमों और लोगों के साथ सहभागिता की रही है। इसीलिए यह उद्देश्य निर्धारित किया गया कि गांवों में एकता सहभागिता और जनतांत्रिक प्रणाली का विकास हो।

4. गांवों के लोगों को संगठित कर उन्हें स्वावलम्बी, आत्म निर्भर और आत्म विश्वास से पूर्ण बनाना।

5. पारस्परिक तनावों को दूर करने के लिए गांवों में आय और व्यय के समान वितरण की व्यवस्था की जाय और विकास सम्बन्धी लाभ को सक्को समानता के स्तर पर वितरित करना।

6. गांवों के कमजोर वर्ग के लोगों को विशेष प्रोत्साहन एवं सहायता प्रदान करना।

7. सत्ता का विकेन्द्रीकरण और स्वैच्छिक संस्थाओं को महत्व देना।

8. ग्रामीण उद्योगों का विकास करना।

संविधान संशोधन 1994 रू राजीव गांधी के प्रधान मंत्रित्व काल में पंचायती राज को व्यापकता देने और आवश्यक बनाने के लिए संविधान में एक संशोधन किया गया। इस संशोधन की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि राज्य सरकार सही ढंग से पंचायती राज

प्रणाली का संचालन नहीं कर रही थी। अलग–अलग राज्यों में अलग व्यवस्था के कारण समय से संस्थाओं का गठन नही हो पाता था। समय से चुनाव नही होते थे। कई कई राज्य तो ऐसे थे जहाँ वर्षों से चुनाव नहीं हुए थे। इसके साथ ही पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाओं को सही प्रतिनिधित्व नही हो पा रहा था। इन समस्याओं के समाधान और पंचायतीराज को व्यापकता प्रदान करने के लिए संशोधन की आवश्यकता थी। संशोधन के माध्यम से महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण का प्राविधान किया गया। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को पर्याप्त आरक्षण मिला। अब पंचायतों के चुनाव और अन्य संस्थाओं के गठन में व्यापकता आयी है और सभी राज्य अब समय से चुनाव कराने लगे हैं।

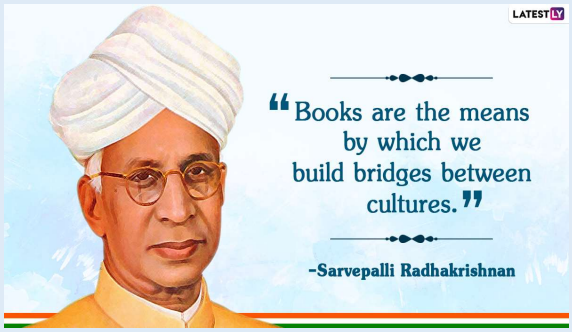

Center for Distance Learning & Continuing Education
MAHATMA GANDHI CHITRAKOOT GRAMODAYA VISHWAVIDYALAYA
Chitrakoot, Satna (M.P.) 485334
E-mail : directordistancemgcgv@gmail.com